शोध सरोवर पत्रिका

आरती, वषुतक्काटु, तिरुवनन्तपुरम - 695 014, केरल राज्य।

RNI No. KERHIN/2017/70008 ISSN No. 2456-625 X

वर्ष 6 अंक 22 त्रैमासिक हिन्दी शोध पत्रिका 10 अप्रैल 2022

पीयर रिव्यू समितिः
डॉ.टी.के.नारायण पिल्लै
डॉ.शांति नायर
डॉ.के.श्रीलता

मुख्य संपादक
डॉ.पी.लता

प्रबंध संपादक
डॉ.एस.तंकमणि अम्मा

सह संपादक
प्रो.सती.के
डॉ.एस.लीलाकुमारी अम्मा
श्रीमती वनजा.पी

संपादक मंडल
डॉ.बिन्दु.सी.आर
डॉ.षीना.यू.एस
डॉ.सुमा.आई
डॉ.एलिसबत्त जोर्ज
डॉ.लक्ष्मी.एस.एस
डॉ.धन्या.एल
डॉ.कमलानाथ.एन.एम
डॉ.अश्वती.जी.आर

सूचना : पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचार संबंधित लेखकों के हैं। उनसे संपादक तथा प्रकाशक का सहमत होना आवश्यक नहीं है।

इस अंक में

संपादकीय	:		3
मन्नू भंडारी का उपन्यास साहित्य	:	डॉ.पी.के.प्रतिभा	4
आधुनिक संतों की वैभव गाथा 'संत न बाँधे गाँठड़ी'	:	गंगा कोइरी	9
महाभोज में राजनीति	:	डॉ.सुमा.आई	15
यौन उत्पीड़न की सच्चाई से पर्दा उठाती सुभद्रा कुमारी चौहान की कहानियाँ	:	डॉ.बीना आया	17
मन्नू भंडारी की कहानी सज़ा में न्याय व्यवस्था की विसंगति	:	डॉ एलिसबत जॉज	21
'सबसे बुरी लड़की' की गवाही	:	डॉ.प्रकाश.ए	22
पारिवारिक विघटन की समस्याएँ 'आपका बंटी' में	:	डॉ.षीबा शरत.एस	26
कोरोना काल में जड़ता के विरुद्ध सामर्थ्य और आत्मविश्वास की कविता 'प्रार्थना'	:	नेहा साव	28
'आपका बंटी' उपन्यास में चित्रित बाल मनोविज्ञान	:	डॉ.धन्या.एल	32
आपका बंटी में चित्रित स्त्री-विमर्श	:	डॉ.रीनाकुमारी.वी.एल	33
इंदिरा गोस्वामी के उपन्यासों में मानवतावाद	:	मिनहाज अली	36
हिंदी कविता में कश्मीर की बहुरंगी संस्कृति एवं समाज के विविध आयाम	:	उमर बशीर	42
'बिना दीवारों के घर' नाटक में स्त्री जीवन	:	डॉ.लक्ष्मी.एस.एस	47

यू जी सी से अनुमोदित पत्रिका

लेखकों से निवेदन

भाषा, साहित्य, समाज एवं संस्कृति पर लिखी गयी स्तरीय मैलिक तथा अप्रकाशित रचनाएँ भेजें। प्राकशनार्थ अनूदित रचनाओं के साथ मूल लेखकों से प्राप्त सहमति पत्र भी भेजें। रचनाएँ डी.वी.सुरेख ई.एन फोण्ट में हिंदी यूनिकोड मंगल फाँट में टंकित होना चाहिए। लेख के प्रारंभ में लेख का सार अपेक्षित है जो अधिकतम 150 से 200 शब्दों के मध्य हो। सार में लेख लिखने का उद्देश्य अदश्य परिलक्षित होना चाहिए। लेख के अनुरूप 5 से 7 कीवर्ड भी लिखें।लेख को यथोचित शीर्षकों में विभाजित करके लिखें। लेख के अंत में निष्कर्ष अवश्य दें। शब्द सीमा 2500 से 3000 शब्दों की ही। आलेख के अंत में संदर्भ ग्रंथों की सूची ए.पी.ए. के प्रारूप में हो। लेख पर अपना नाम एवं पता न लिखें। लेख भेजते समय अपना नाम, पता, फोन नंबर एवं लेख का शीर्षक ईमेल में अवश्य लिखें। समीक्षा समिति द्वारा प्रकाशन हेतु स्वीकृत होने पर लेखक को इस आशय का एक घोषणा-पत्र प्रस्तुत करना होगा कि उनका लेख मौलिक है, अप्रकाशित है, भविष्य में इससे संबंधित किसी भी विवाद के लिए लेखक उत्तरदायी होगा एवं इसका प्रतिलिप्याधिकार केंद्रीय हिंदी संस्थान को सौंप रहा हूँ। लेख प्रकाशित होने पर केंद्रीय हिंदी संस्थान द्वारा निर्धारित मानदेय देय होगा।

आप महानुभावों से अनुरोध है कि इस सूचना को हिंदी विद्वानों, हिंदी प्रेमियों एवं विभिन्न विश्वविद्यालयों में शोध कर रहे छात्रों तक पहुँचाने में सहयोग करें।रचना के अंत में अपना पूरा डाक पता, मोबाइल नंबर और ई-मेल पता भी अंकित करें। संक्षिप्त जीवन-परिचय और फोटो भी भेजें।

संपादक

डॉ.पी.लता

शोध सरोवर पत्रिका

मूल्य : एक प्रति रु. 100/-

वार्षिक शुल्क रु.400/-

पत्रिका के संबंध में अधिक जानकारी केलिए संपर्क करें - डॉ.पी.लता (संपादक, शोध सरोवर पत्रिका; मंत्री, अखिल भारतीय हिन्दी अकादमी), आरती, टी.सी. 14/1592, फोरस्ट ऑफीस लेन, ई-28, वषुतक्काटु, तिरुवनन्तपुरम - 695 014, केरल राज्य।

फोन : 0471-2332468, 9946253648, 9946679280

ई-मेल : akhilbharatheeyhindiacademy@gmail.com

वेबसाइट : www.shodhsarovarpathrika.co.in

संपादकीय

केरल की हिन्दी पत्रिकाएँ यू जी सी केयर लिस्ट में शामिल हुई हैं

स्वतंत्रता-संग्राम के सिलसिले में जबसे दक्षिण भारत में हिन्दी का प्रचार शुरू हुआ तब से केरल प्रांत भी इस ओर उन्मुख था। यहाँ के कुछ राष्ट्र सेवियों ने पत्रकारिता के माध्यम से हिन्दी का प्रचार करना शुरू किया। एक देश को पूरे आयामों में बाँधे रखने का कार्य पत्रकारिता सही सलामत में करती है।

स्वाधीनता आंदोलन के समय राष्ट्रनेता गाँधीजी का आह्वान मानकर हिंदीतर क्षेत्र के कुछ राष्ट्रप्रेमी व्यक्तियों का ध्यान हिन्दी भाषा के प्रचार में केन्द्रित हुआ। हिन्दी स्वतंत्रता-संग्राम का शक्तिशाली हथियार मानी गयी। हिन्दी पढ़ना तथा उसका प्रचार करना अनिवार्य कार्य माने गये। अहिन्दी भाषी क्षेत्र सहित पूरे देश में हिन्दी की आँधी मची गयी।

हिन्दी पत्रकारिता के इतिहास में भारत के दक्षिणी छोर में स्थित केरल की पत्रिकाओं का अहम् महत्व है। सृजनात्मक लेखन, साहित्यानुवाद, विविध विषयक शोध लेख, समीक्षा, तुलनात्मक अध्ययन आदि से भारतीय साहित्य को संपुष्ट करने में 'केरल की हिन्दी पत्रकारिता' का योगदान महत्वपूर्ण है। केरल में कुछ व्यक्तियों तथा स्वैच्छिक हिन्दी सेवी संस्थाओं द्वारा प्रकाशिक हिन्दी पत्रिकाएँ हिन्दी के प्रचार-प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका सकी हैं।

केरल की सर्वप्रथम हिन्दी पत्रिका 'हिन्दी मित्र' सन् 1941 में श्री जी.नीलकंठन नायर जी से प्रकाशित हो जाने से पहले केरल के हिन्दी लेखक 'दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा' (मद्रास) पत्रिकाओं- हिन्दी प्रचारक (1923-1938), हिन्दी प्रचार समाचार (1938 से), दक्षिण भारत (1938 से) में लिखते थे। 'हिन्दी मित्र' प्रकाशित होने के बाद और कुछ व्यक्तियों से भी पत्रिकाएँ निकाल गयीं, यथा ललकार, विश्वभारती, अरविन्द, प्रताप, भाव और रूप, केरल पत्रिका आदि। 'मातृभूमि पब्लिशिंग कंपनी' से डॉ.एन.पी.कृष्णवारियर के संपादकत्व में प्रकाशित 'युग प्रभात' पाक्षिक लंबे अर्से -सन् 1956 से सन् 1973 तक में प्रकाशित हिन्दी पत्रिका है। केरल में फिलहाल कुछ शैक्षिक संस्थाओं के हिन्दी विभागों तथा स्वैच्छिक हिन्दी सेवी संस्थाओं से शोध पत्रिकाएँ प्रकाशित होती हैं। शैक्षिक संस्थाओं की पत्रिकाएँ हैं-अनुशीलन (कोच्चिन विश्वविद्यालय), शोध दर्पण (केरल विश्वविद्यालय), वातायन (सरकारी महिला महाविद्यालय, तिरुवनंतपुरम) आदि। स्वैच्छिक हिन्दी सेवी संस्थाओं से जन विकल्प, संग्रथन, शोध सरोवर पत्रिका आदि निकलती है। इनमें अंतिम दोनो यू जी सी से अनुमोदित पत्रिकाएँ हैं। 'संग्रथन' हिन्दी विद्यापीठ (केरल) की पत्रिका है। सन् 1987 से सन् 2013 तक यह नियमित रूप से निकलती थी, फिर करीब चार साल प्रकाशन रुक गया और अब प्रकाशित हो रही है। यू जी सी केयर लिस्ट में शामिल हुई इस पत्रिका के संपादन का दायित्व डॉ.वी.वी.विश्वम् निभा रहे हैं। जनवरी 2017 से नियमित रूप से निकलनेवाली पत्रिका है 'शोध सरोवर पत्रिका' जो अखिल भारतीय हिन्दी अकादमी की मुख पत्रिका है और यू जी सी केयर लिस्ट में शामिल है।

'राष्ट्रीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन' के संस्थापक स्व. तिरुमला चन्द्रनजी (डॉ.आर.एस.रामचन्द्रन नायर) के संपादकत्व में निकली 'भारत पत्रिका' यू जी सी से अनुमोदित हुई थी। किन्तु चन्द्रनजी के स्वर्गस्थ होने पर थोड़े समय के लिए इसका प्रकाशन रुक गया। अब यह उनके दोनों पुत्रों तथा डॉ.बी अशोक जैसे हिन्दी सेवियों के प्रयास से प्रकाशित हो रही है।

◆ संपादक

डॉ.पी.लता

मंत्री, अखिल भारतीय हिन्दी अकादमी

मन्नू भंडारी का उपन्यास साहित्य

♦ डॉ.पी.के.प्रतिभा

सार- साठोत्तरी उपन्यासकारों में मन्नूभंडारी का नाम अद्वितीय है। वे अपने परिवेश के प्रति प्रतिबद्ध हैं। मुख्य रूप से वे नारी मन की लेखिका हैं। लेकिन उन्होंने नारी से जुड़ी समस्याओं का चित्रण ही नहीं किया है बल्कि समाज में व्याप्त अन्य अनेक सामाजिक समस्याओं पर भी प्रकाश डाला है। भारतीय जनता के बदलते चेहरे को मन्नूजी ने अपने उपन्यासों में प्रस्तुत किया है। उनकी पाँच औपन्यासिक कृतियाँ प्रकाशित हो चुकी हैं एक इंच मुस्कान (1961), आपका बंटी (1971), कलवा (1971)महाभोज (1979) और स्वामी (1982)।

बीज शब्द- मूल्य, आधुनिकता बोध, अहं, नारी चेतना, राजनीतिक भ्रष्टाचार

भूमिका

सहितस्य भावः साहित्यम्। अर्थात् 'साहित्य' शब्द में ही मानव कल्याण वा जगत कल्याण की भावना निहित है। वैदिक काल से लेकर आज तक मानव जीवन में जितने भी मूल्य परिवर्तित हुए हैं, उनको हम साहित्य के आधार पर ही स्पष्ट कर सकते हैं। डॉ.बैजनाथ सिंहल के अनुसार "साहित्य जीवन-मूल्यों की प्रतिष्ठा का सशक्त आधार है। जिस मूल्य की सिद्धि मानवीय अनुभव द्वारा जीवन में कर ली जाती है, वही साहित्य में प्रतिबिम्बित होती है।"[1]

समाजशास्त्रियों की मान्यता के अनुसार सामाजिक परिवर्तन से ही जीवन-मूल्यों में बदलाव आता है। परिवेश के परिवर्तन होने पर ही परंपरागत मूल्य सारहीन प्रतीत होने लगते हैं। तब उनके स्थान पर युगानुकूल मूल्यों की खोज प्रारंभ हो जाती है। स्वातंत्र्योत्तर उपन्यासों पर दृष्टिपात करें तो उसमें मूल्यों के विघटन की समस्या बड़ी तेज़ी से उभरी है। फलस्वरूप सम्बन्धों का सहज, स्वाभाविक रूप विकृत होता चला, रिश्तो में दरारें पड़ गईं। समयानुसार जीवन की बढ़ती ज़रूरतों ने समाज की मानसिकता में परिवर्तन किया। बदले हुए सामाजिक परिवेश में नारी अबला से सबला बनने की तरफ अग्रसर हुई है। समाज में नारी की निरीह स्थिति में बदलाव आया है। स्त्री-पुरुष का विवाह और प्रेम सम्बन्धी दृष्टिकोण पूरी तरह से बदल गया है। नारी पुरुष के समान ही जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में कार्यरत है। घर से निकलकर पुरुष के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर वह चल रही है। आज विवाह का आधार प्रेम या भावात्मक संवेदना, युग-युग के सम्बन्ध की आस्था या विश्वास नहीं है, अपितु उसे मात्र एक सामाजिक समझौता, साथ रहने की आवश्यकता भर समझा गया है। पति-पत्नी के बीच की ऊष्मा मानो कहीं खोती जा रही है। इस प्रकार मूल्य परिवर्तन और नारी पुरुष सम्बन्ध पर अपनाए नए दृष्टिकोण ने परंपरागत नारी के दमित व्यक्तित्व को तोड़ दिया है। वह पुरुष के समकक्ष अपने को अनुभव कर पाई है। नैतिकता की नई दृष्टि ने जब काम को नारी-पुरुष सम्बन्ध के किसी पवित्र आधार के बदले निरी शारीरिक आवश्यकता के रूप में देखा तो कामकाजी औरतों केलिए वैवाहिक सम्बन्ध और प्रेम सम्बन्ध पुरुष के साथ आजीवन दासता की स्थिति के बदले अपनी आर्थिक स्वतंत्रता का और एक व्यवहार क्षेत्र ही ठहरे। नारी अपने अधिकारों के प्रति सजग और सचेत हुई है। स्त्री शिक्षा और शिक्षा के आधार पर प्राप्त नौकरियों ने आज स्त्री को आत्मविश्वास, आर्थिक सुरक्षा व सक्षमता प्रदान कर उसे यह समझा दिया है कि वह किसी भी प्रकार पुरुष से हीन नहीं है। फलत आधुनिक स्त्री में

व्यक्तित्व की स्वतंत्र सत्ता स्थापित करने की छटपटाहट बढ़ गयी है।

मन्नू भंडारी के उपन्यासों नारी चेतना और और अन्य सामाजिक समस्याएँ

मन्नू भंडारी के उपन्यासों में मध्यवर्ग के जीवन का यथार्थ चित्रण मिलता है। उनकी रचनाओं में नारी जीवन के विविध पहलुओं का उद्घाटन हुआ है। इस प्रकार सामाजिक तथा वैयक्तिक परिप्रेक्ष्य में नारी के बदलते अनेक रूपों को अपनी रचना का आधार बनाकर उपन्यास साहित्य को नया आयाम और नयी दिशा दी है। साथ ही नारी के स्वतंत्र व्यक्तित्व का परिचय भी दिया है, नारी के जीवन को नये संवेदनीय कोणों से प्रस्तुत किया है। वे आधुनिक समय में संघर्ष कर रही आज की औरत के अस्तित्व और अस्मिता को व्यक्त कर देती हैं। वे देखती हैं कि प्राचीन जीवन- मूल्य आधुनिक परिवेश में टूट रहा है। पीढ़ियों का अन्तर भी आधुनिक जीवन का एक यथार्थ है। उनमें पारिवारिक सम्बन्धो की जीवन्त टकराहट देख सकते हैं। उन्होंने बड़ी सहजता तथा सजीवता से मानव मन की कुण्ठाओं का चित्रण किया है। उनकी नारियाँ नैतिकता की सीमा में अपने को बाँधना नहीं चाहती हैं। इसी विचार से एकाधिक पुरुषों से भी विवाह करने को तैयार हो जाती हैं। उन्होंने ऐसी नारियों का विशेष चित्रण किया है जो जीवन में संघर्षरत रहकर अपने स्वतंत्र अस्तित्व का उद्घोष करती हैं। 'आपका बंटी' की शकुन प्राध्यापिका है और पति से सम्बन्ध-विच्छेद होने के बावजूद इसी व्यवसाय के कारण आत्मनिर्भर रहती है। मन्नूजी ने तत्कालीन समाज में स्त्री-शिक्षा की महत्ता का उद्घोष कर स्त्री पात्रों को शिक्षित चित्रित किया है। उदाहरण केलिए चाहे 'एक इंच मुस्कान' की रंजना हो, अमला हो, 'आपका बंटी' की शकुन या फिर 'स्वामी' की सौदामिनी। इस अर्थ प्रधान युग में अपने अस्तित्व को बनाये रखने केलिए स्त्री को आर्थिक परतंत्रता से मुक्ति पाना आवश्यक हो गया है। उनके स्त्री पात्र विवाह सम्बन्ध में अपने भविष्य के फैसले स्वयं लेती हैं और आत्मनिर्भर होने के बल पर रूढ़ियों को नकारती हैं। मन्नूजी के उपन्यास 'स्वामी' की मिनी एक पढ़ी-लिखी तथा वर्तमान राजनीतिक व्यवस्था और सामाजिक बदलाव पर बहस करनेवाली पात्र है। इस प्रकार मन्नूजी में अनुभवों की सच्चाई और संवेदनशीलता है। उनमें दो चीज़ें विशेष उल्लेखनीय हैं। एक तो उन्होंने पारिवारिक जीवन की विविध समस्याओं और नर-नारी सम्बन्धों के विविध आयामों को लिया है और कहीं-कहीं तो सामाजिक जीवन के भी गहरे प्रश्नों को प्रामाणिकता के साथ रूपायित किया है। राजनीतिक विकृति का चित्रण उन्होंने अपने 'महाभोज' नामक उपन्यास में किया है।वे अपने आसपास के परिवेश से पात्र, घटनाएँ और कहानियाँ चुनकर दैनिक जीवन में इस्तेमाल होनेवाली आम भाषा में लिखती हैं। उनकी रचनाएँ अपने परिवेश के विविध अनुभवों, मानवीय पीड़ा, मानवीय दृष्टि, अपने खुलेपन और अकृत्रिम भाषा के कारण सार्थक और प्रभावशाली बन पड़ी हैं। 'एक इंच मुस्कान', 'आपका बंटी', 'कलवा', 'महाभोज', 'स्वामी' आदि उनके प्रमुख उपन्यास हैं।

एक इंच मुस्कान

'मन्नू भंडारी' के उपन्यास मानव मनो-वृत्तियों पर गहरा चिन्तन है। 'एक इंच मुस्कान' मन्नू भंडारी और राजेन्द्र यादव द्वारा लिखित प्रयोगात्मक उपन्यास है। इसमें नारी पात्रों की कहानी मन्नू भंडारी ने अमला और रंजना के माध्यम से और राजेन्द्र यादव ने अमर की कहानी बनाकर पुरुष पात्र का चित्रण किया है। उन्होंने इन तीनों पात्रों के त्रिकोणात्मक प्रेम का चित्रण करके एक नवीन शिल्पगत प्रयोग किया है। इसमें प्रेम, दांपत्य जीवन का उतार-चढ़ाव और आर्थिक और मानसिक विद्रूपताओं का अत्यधिक सहज चित्रण है। यह लेखक अमर की कहानी है जो पत्नी और प्रेमिका के बीच अन्तर्द्वन्द्व से ग्रस्त होकर जीवन जीने केलिए अभिशप्त है। इस उपन्यास की प्रमुख स्त्री पात्र अमला शिक्षित नारी है। पूँजीपति की बेटी अमला का विवाह घरवालों ने एक अमीर युवक के साथ करवाया। लेकिन एक साल में ही पति द्वारा अपमानित उस नारी को पति छोड़ देता है। भरी जवानी में ही वह यौन सुख से वंचित

होती है। इस अभाव की पूर्ति वह परपुरुष द्वारा करती रहती है। विवाह संस्था से उसका विश्वास उड़ जाता है। अपनी मुस्कान में कैद करके कैलाश, अमर, ठण्डन आदि अनेक पुरुषों से वह यौन सम्बन्ध स्थापित करती है। पर वह यौनतुष्टि प्राप्त नहीं कर पाती है। वह प्रेमी से ऐसी पीड़ा प्राप्त करना चाहती है कि उसका शरीर चूर-चूर हो जाए। अमर से वह स्पष्ट शब्दों में कहती है "मन करता है खब सजूँ, संवरूँ और शील की सीमों को पार करके व्यवहार करूँ। सोलह साल की उम्र का जो नशा और उन्माद होता है, वह मुझपर छाया रहता है।"[2] अन्त में जीवन से ऊबकर वह खुदकुशी कर लेती है। अमला अपने स्वतंत्र निर्णय द्वारा अस्तित्व को अर्थ प्रदान करती रहती है और दमित भावनाओं और कुंठा के कारण नारी यौन विकृति की शिकार बनती है।

'एक इंच मुस्कान' की रंजना अमर से प्यार करती है, जो एक लेखक है। अमर की आमदनी कम होने के कारण वह रंजना से शादी करने में हिचकिचाता है। यह जानकर रंजना कहती है "मैं स्वयं कमाती हूँ, समय आने पर और अधिक परिश्रम करने की क्षमता भी मुझमें है। मैं तुमसे कुछ नहीं चाहूँगी.....मैं तो सिर्फ तुम्हें एक ऐसा घर, ऐसा वातावरण देना चाहती हूँ जहाँ तुम सब ओर से निश्चिंत होकर लिख सको।"[3] रंजना एक कॉलेज में पढ़ाती थी अमर के प्यार से अंधी होकर अपना परिवार छोड़कर दिल्ली में आती है। बाद में दोनों की शादी होती है। पर वह कामयाब नहीं होती। रंजना और अमर का मनमुटाव अमला को लेकर ही होता है। अपने प्रति अमर की उपेक्षा भरे व्यवहार से त्रस्त होकर रंजना उसे छोड़कर चली जाती है। अमला की मुस्कान के जादू में पड़कर अमर न एक सफल पति बन पाता है और न एक सफल प्रेमी।

आपका बंटी

वर्तमान युग के मनुष्य में पारंपारिक मूल्यों के प्रति मोह एवं नवीन मूल्यों के प्रति आकर्षण एक साथ दिखाई देता है।पाश्चात्य प्रभाव के कारण नारी अधिकाधिक अब व्यक्ति रूप में प्रतिष्ठित होने लगी है। पति-पत्नी के बीच पलनेवाली पातिव्रत्य और सतीत्व की भावना अब निष्प्राण हो गयी है। परिणामतः विवाह-विच्छेद की स्थिति निर्मित होती है। 'आपका बंटी' अपने ढंग का अकेला उपन्यास है। इसके माध्यम से नारी जीवन में नयी क्रांति का संचार करनेवाली धारणा आधुनिकताबोध के खोखलेपन की बड़े तीक्ष्ण स्वर में आलोचना की गयी है। शकुन और अजय पति-पत्नी हैं। दोनों में अहंभाव प्रखर मात्रा में है। उनमें निरंतर संघर्ष होता रहता है। अत दाम्पत्य सम्बन्धों की टकराहट हर रोज़ की बात बन जाती है। इससे पति-पत्नी निरंतर घुटन, तनाव, संत्रास के शिकार बने रहते हैं। अपने अहं की हत्या दोनों को भी मंजूर नहीं है। वे दस साल साथ-साथ रहे। परन्तु मन से वे बिल्कुल एक दूसरे से अलग थे। "दस वर्ष का वह वैवाहिक जीवन एक अंधेरे सुरंग में चलते जाने की अनुमति से भिन्न न था।"[4] शकुन और अजय की इकलौती संतान है बंटी। इसकी कथावस्तु के केन्द्र में तलाक की त्रासदी के दुष्परिणामों को झेलता बंटी है, जिसके माता-पिता में सम्बन्ध-विच्छेद हो गया है। पति-पत्नी अपनी जिन्दगी को नये सिरे से शुरूकर लेते हैं। पति-पत्नी संबन्ध में जब दरार निर्माण होती है तो शकुन बंटी को अपने पास रखती है और उसे बहुत प्यार करती है। लेकिन जब उसे पता चलता है कि उसके पति अजय ने मीरा के साथ विवाह किया है तो वह भी अजय से प्रतिशोध लेने केलिए डॉ.जोशी के साथ पुनर्विवाह करती है। इससे बंटी अकेलापन का शिकार बन जाता है। पति-पत्नी के अहंभाव ने उसका फूल-सा कोमल मन कुचल डाला। पर बंटी कभी भी डॉक्टर को अपना पापा नहीं समझ पाता। वह निरन्तर उपेक्षित अनुभव करता है। वह चिड़चिड़ा और जिद्दी हो जाता है। जब कभी बंटी उन दोनों के बीच बाधक सा व्यवहार करने लगता है, तब शकुन के मन में बंटी के प्रति घृणाभाव निर्माण हो जाता है। बंटी के प्रति वह उदासीन बन जाती है। इसलिए अजय के पास बंटी को भेज देती है। वह सोचती है कि बंटी को दरार ही बनना है तो अजय और मीरा के बीच बने। किंतु वहाँ भी बंटी अपने

को अजनबी पाता है। मीरा को वह अपनी मम्मी नहीं मान पाता। अन्त में उसे होस्टल भेज दिया जाता है। जब बंटी मम्मी से दूर चला जाता है तो मम्मी के भीतर का संघर्ष तेज होता है। वह अन्त तक चैन से जी नहीं पाती। पति के घर रहकर उसका आंतरिक संघर्ष कम होने के बदले और अधिक बढ़ जाता है। अपने अहं के कारण वह न पत्नी धर्म निभा पाती है न ही मातृधर्म। पहले जो शकुन वत्सलता की मूर्ति थी, अब अपने बेटे बंटी के साथ कठोरता से पेश आती है।उ से लगता है "सच, हम लोग शायद बंटी को मात्र एक साधन ही समझते रहे। अपने-अपने अहं, अपनी-अपनी महत्वाकांक्षाओं और अपनी-अपनी कुंठाओं के संदर्भ में ही सोचते रहे। बंटी के संदर्भ में कभी सोचा ही नहीं।"[5] यह सोचकर शकुन एकाएक फूट-फूटकर रो पड़ती है। वह अपने आपको कोस रही है। शकुन का अपने आपको कोसना उसके भीतरी संघर्ष के कारण है। भीतरी संघर्ष के कारण ही वह टूटती, बिखरती चली जाती है। आज के मध्यवर्गीय समाज में तलाक की समस्या ने अनेक समस्याएँ उत्पन्न की हैं। इनमें सबसे जटिल समस्या तलाकशुदा दम्पतियों के बच्चों की है। मन्नू भंडारी ने बंटी के मनोविज्ञान का बड़ा ही सूक्ष्म अंकन किया है। बंटी को लगता है कि उसकी मम्मी उसकी अकेली न रहकर बहुतों की हो गयी हैं और शायद सबसे कम उसकी अपनी। उपन्यासकार ने बच्चे, पति और पत्नी तीनों की मानसिकता चित्रित करके बंटी के जीवन की अनिश्चितता और उसकी ट्रेजड़ी का अहसास उभारा है। बच्चे के केन्द्र में होने के बावजूद भी लेखिका पत्नी के दर्द को भी प्रामाणिकता से उभार सकी है। यह वैयक्तिक दम्भ से उत्पन्न आधुनिक समस्याओं को स्वर देता प्रगतिवादी सामाजिक उपन्यास है। इसमें सम्बन्धों के टूटने से जो पारिवारिक तनाव, हताशा और अकेलापन एक औरत और बच्चे को झेलना पड़ता है उसका यथार्थ चित्रण मिलता है।

कलवा

'कलवा' एक चमार के बेटे के जीवन से सम्बन्धित बालोपयोगी उपन्यास है।

महाभोज

'महाभोज' एक राजनीतिक उपन्यास है। इसका परिवेश वैयक्तिक या पारिवारिक न होकर सामाजिक है। भारतीय समाज में राजनीतिक जीवन में घुसपैठ करती मूल्यविहीनता को 'महाभोज' गहरी संलग्नता के साथ उद्घाटित करता है। लेखिका ने राजनीतिक परिवेश को आधार बनाकर इसका सृजन किया है। इस प्रकार राजनीतिक सन्दर्भ में मनुष्य की नियति का आलेख प्रस्तुत किया गया है। उपन्यास का राजनीतिक परिवेश अत्यन्त भ्रष्ट, घिनौना और लज्जित करनेवाला है। इसमें राजनेताओं की कुरसी को लेकर होती लड़ाइयाँ, राजनीति में गालीगलौज, हुड़दंग-गुण्डागर्दी, हत्या, वोट केलिए जनता को फास में लड़ाना, काले को सफेद और सफेद को काला करना आदि बातें उद्घाटित हुई हैं। बिसेसर नामक एक पिछड़ी जाति के युवक की हत्या हो जाती है। उसकी मृत्यु के महीने भर पहले सरोहा गाँव के पासवाले हरिजनों की झोंपड़ियों को आग लगाई जाती है। लेकिन इसे रिपोर्ट करने केलिए कोई पुलिस न आती है और न नेता। किन्तु चुनाव के डेढ़ महीने पहले हुए बिसेसर की मृत्यु अधिकारी वर्ग और विरोधी वर्ग दोनों केलिए अत्यन्त महत्वपूर्ण घटना बन गयी। इस हत्या का राजनीतिक लाभ पदासीन मुख्यमंत्री दासाहब और पदच्युत मुख्यमंत्री सुकुलबाबू दोनों उठाना चाहते हैं। हत्या दासाहेब के समर्थक और सहयोगी ज़मीन्दार जोरावर ने करायी है। इसलिए वे इस मामले को ठंड़ा करना चाहते हैं। इसके विपरीत सुकुलबाबू इसे उभाड़कर जनता की सहानुभूति प्राप्त करना चाहते हैं। इस प्रकार सभी राजकीय वर्ग बिसेसेर की मृत्यु पर महाभोज कर अपने स्वार्थों की पूर्त्ति करते हैं। सामान्य जनता के प्रति सच्ची सहानुभूति किसी में नहीं है। लेखिका ने दलितों के शोषण का जो चित्र 'महाभोज' में दिया है वह हिंदी साहित्य केलिए एक अलग अनुभव था। उन्होंने वर्तमान व्यवस्था की खामियों को खुलकर उजागर किया है। पत्रकारिता की एथिक्स को हवा

में उड़ानेवाले संपादकों और पुलिस की उदासीनता और अनैतिकता का भी खुला चित्रण उपन्यास में किया गया है। हरिजन झोंपड़ियों में आग लगाने पर लोग दौड़कर थाने पहुँते तो "थानेदार साहब छुट्टी पर थे और जो दो लोग वहाँ ड्यूटी पर थे उन्होंने यह कहकर बात टाल दी कि थानेदार साहब के आने पर ही मौके पर जायेंगे और तहकीकत होगी।"[6] आज देश में अवसरवाद, भ्रष्टाचार अफसरशाही का बोलबाला है। उपन्यास में ग्रामीण परिवेश के चित्रण और घटित होते हुए परिवर्तन की प्रतिक्रियाओं के विशलेषण में खामी हो सकती है, किन्तु व्यवस्था पोषक राजनीति और उसके चलते होनेवाले सामाजिक उत्पीडन को बेनकाबा करने में लेखिका ने साहस का परिचय दिया है। इस प्रकार मन्नू भंडारी ने महाभोज के माध्यम से राजनैतिक षड्यंन्त्रों को ग्रामीण व कस्बाई सन्दर्भों में उजागर किया है।

स्वामी

मन्नू भंडारी द्वारा लिखित स्वामी उपन्यास महान कथा शिल्पी शरत बाबू की कहानी स्वामी से प्रेरित है। मन्नूजी ने इस कहानी को उपन्यास में रूपान्तरित करते समय उसके उद्दश्य को भी रूपान्तरित किया। इसकी नायिका सौदामिनी है जिसे मिनी कहा गया है। वह एक सुशिक्षित आधुनिक विचारों की युवा नारी है। उसे धर्म के नाम पर की जानेवाली छुआछूत उचित नहीं लगती। भगवान के प्रति भी वह अनास्थावान है। धर्म के नाम पर किये जानेवाले आडंबरों का सौदामिनी विरोध करती है। उसका प्रेमी नरेन्द्र है। स्वतंत्र विचारोंवाली वह युवती विवाह पूर्व ही प्रेमी के साथ सम्बन्ध रखता है। बाद में वह अपने मामा के द्वारा निश्चित सम्बन्ध के अनुसार मज़बूर होकर घनश्याम से शादी करती है। पर वह अपने प्रेमी नरेन्द्र से अब भी प्रेम रखती है। बाद में वह पति का घर छोड़कर चली जाती है। वह नरेन्द्र के साथ जीना चाहती है। लेकिन अपने पति के प्रति उसके मन में प्यार, सम्मान और आदर का भाव भर जाता है। वह नरेन्द्र के साथ जीना चाहती है लेकिन अपने पति घनश्याम की निरीहता देखकर वह ज़िंदगी में लौट आती है। घनश्याम प्रेमी के साथ भागी पत्नी को स्वीकार करने केलिए तैयार होता है । इस पर नरेन्द्र की टिप्पणी घनश्याम के व्यक्तित्व पर चार चाँद लगाती है "घर से भागी हुई स्त्री को शरण देनेवाले देव पुरुष मैंने अपने देश में तो कभी देखे नहीं। राम तक तो सीता को नहीं पचा पाए थे।"[7] सौदामिनी हर बात पर अपना अलग दृष्टिकोण रखनेवाली औरत है। उसकी माँग है कि विवाहोपरान्त भी नारी को अन्य पुरुषों के साथ प्रेम करने का अधिकार मिलना चाहिए। क्योंकि पुरुष विवाहोपरान्त भी यह सुख प्राप्त करता रहता है। मिनी की यह सोच उसकी नारी- स्वतंत्रता को स्पष्टतः उजागर करती है। उसके द्वारा एक स्वतंत्र चेता आधुनिक नारी का खुला व्यक्तित्व सामने आता है।

निष्कर्ष

हिंदी की महिला उपन्यास लेखिकाओं में मन्नू भंडारी का नाम सर्वाधिक महत्व का है। उनकी रचनाएँ बृहत्तर सामाजिक अनुभवों और संकट की हैं। वे अपने परिवेश के विविध अनुभवों, मानवीय पीड़ा, मानवीय दृष्टि, अपने खुलेपन और अकृत्रिम भाषा के कारण प्रभावशाली बन गई हैं। नारी मनोविज्ञान के वे माहिर हैं। वे नारी जीवन के नये भावबोध का आलेखन करनेवाली सशक्त कहानीकार हैं। उन्होंने नारी की अभिव्यक्ति को स्वयं की संवेदनाओं के साथ जोड़ दिया है। शायद इसीलिए तो इनकी नारियाँ इतनी जीवन्त बनकर आयी हैं। आर्थिक स्वतंत्रता ने स्त्री में एक प्रकार की सुरक्षा, और आत्मसम्मान की भावना को जन्म दिया है। जीवन के कटु यथार्थ और त्रासद स्थिति के बीच से स्त्री की अस्मिता, स्वावलंबन, आत्माभिमान को गंभीरतापूर्वक मुखरित करती है और अपना विद्रोह प्रकट करती है। इनकी नारियों में कुछ परंपरागत है तो कुछ पढ़ी-लिखी, कामकाजी और एक विशिष्ट वर्ग की नारियाँ हैं। ऐसे विशिष्ट वर्ग की नारियाँ अपने अस्तित्व, व्यक्तित्व की रक्षा और प्रतिष्ठा को लेकर सजग हैं। वे न केवल पुरुष की अद्वितीयता को अस्वीकार करती हैं, बल्कि सही मायनों पर चुनौती भी देती हैं। आधुनिक कामकाजी नारी स्वतंत्र विचारोंवाली है। वह केवल घर की चार दीवारों में नहीं रहना चाहती, बल्कि अपनी पहचान बनाने केलिए हर क्षेत्र

में नौकरी करती है। नारी की आर्थिक निर्भरता ने उसकी सोच, विचार और मूल्य को बदल दिया है। इसके कारण दांपत्य-जीवन में शिथिलता होती है। नारी प्राचीन मान्यताओं, परंपराओं और जीवन-मूल्यों को तोड़कर स्वच्छन्द जीवन-यापन की प्रवृत्ति से प्रेरित हो रही है। स्वतंत्रता के बाद राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक क्षेत्र में आये बदलाव को सच्चा अंकन भी हम उनके उपन्यासों में देख सकते हैं। मन्नूजी के उपन्यास समसामयिक जीवन के तथ्यों के सही दस्तावेज़ ही हैं।

सन्दर्भ

1. साहित्य मूल्य और प्रयोग, डॉ.बैजनाथ सिंहल, पृ.13, 1985
2. एक इंच मुस्कान, राजेन्द्र यादव, मन्नू भंडारी, पृ.247-248, छठा संस्करण, 1980
3. एक इंच मुस्कान, राजेंद्र यादव, मन्नू भंडारी, पृ.53, 1980
4. आपका बंटी, मन्नू भंडारी, 1990, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ-37
5. वही पृ.177
6. महाभोज, मन्नू भंडारी
7. स्वामी, मन्नू भंडारी; नाशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली; 1986; पृ-संख्या-106

◆ हिंदी विभाग, सह आचार्या,
श्री नीलकं सरकारी संस्कृत कॉलेज, पट्टांपि,
पालक्काट।

आधुनिक संतों की वैभव गाथा 'संत न बाँधे गाँठड़ी'

◆ **गंगा कोइरी**

सार- इक्कीसवीं सदी में मिथिलेश्वर कृत 'संत न बाँधे गाँठड़ी' उपन्यास आधुनिक संतों के वैभवपूर्ण जीवन की विसंगतियों को केंद्र में रखकर विविध समस्याओं यथा अंधश्रद्धा, वृद्धजनों का आश्रम में शरण लेना, पारिवारिक उत्पीड़न व संपत्ति विवाद से पलायन होकर आश्रमों की ओर बढ़ते कदम, जातिगत द्वेष, आश्रम में भेंट चढ़ती युवतियों के परिवार की आर्थिक विपन्नता, स्वार्थ-सिद्धि के लिए पौराणिक कथाओं और भारतीय संस्कृति का दुरुपयोग, व्यवसाय का केंद्र आश्रम, नेताओं एवं उद्योगपतियों से संतों की साँठ-गाँठ, आश्रम में साध्वियों द्वारा सत्ता लोभ हेतु यौन शोषण का प्रपंच एवं आश्रम के गुरु बाबाओं की जेल यात्रा आदि विषय सम्मिलित किये गए हैं ।

बीज शब्द:धार्मिक रूढ़ि, आधुनिक आश्रम, संत जीवन, वैभव विलासिता, अंधविश्वास

मिथकों की असीमित परंपराओं में रचा बसा यह देश अपने सामाजिक और सांस्कृतिक गर्भ में असंख्य पहेलियों को समेटा हुआ है। कब कौन-सी घटना, अंधविश्वास, अफ़वाह आदि कौन-से मिथक का रूप धारण करके सदियों तक जनमानस के जेहन में अपनी अमिट छाप छोड़ जाए, कह पाना संभव नहीं है! इन मिथकों में चित्रित होनेवाले असंख्य छोटे-बड़े चरित्रों के बीच संतों और उनके समाज की अपनी अलग ही महिमा और गाथा रही है। एकदम आदिम युग से आज के इस रोबोटिक युग तक शायद ही ऐसा कोई कालखंड रहा हो, जिसमें साधु-संतों ने अपने पदचिह्न न छोड़े हों। कभी ज्ञान के अलख को जगाकर सामाजिक-सांस्कृतिक उन्नति का मार्ग प्रशस्त करनेवाले सुधिजनों के रूप में संतों ने समाज को एक वैज्ञानिक आधार प्रदान किया तो कभी संत समाज की विशाल टोलियाँ विज्ञान के मार्ग में रोड़ा बनकर उभरती

रहीं। उक्त विरोधाभास के बावजूद संतों की सुदृढ़ परंपरा ने जीवन और समाज के सभी पहलुओं पर अपना गहरा प्रभाव डाला है। ऐसे में भूमंडलीकरण के द्वितीय दशक में मिथिलेश्वर कृत 'संत न बाँधे गाँठड़ी' उपन्यास संत समाज के इन्हीं विरोधाभासों एवं वर्तमान समाज पर उनके प्रभावों का सूक्ष्म अवलोकन प्रस्तुत करता है।

मिथिलेश्वर ने उत्तराखंड के धार्मिक नगरी हरिद्वार को केंद्र में रखकर वर्तमान आश्रम के यथार्थपूर्ण दृश्य को उकेरा है। उपन्यास में मुक्त लोक आश्रम के माध्यम से आधुनिक आश्रमों में व्याप्त साधुसंतों के विलासितापूर्ण जीवनशैली को स्पष्ट अभिव्यक्ति दी गई है। कथानक की शुरुआत लोकचंद से होते हुए एक ब्राह्मण परिवार के बालक सुकेश रंजन से स्वामी मुक्तानंद बनने का दृश्य वर्तमान समाज में ढोंगी संत महात्माओं के भ्रमजाल की पोल खोलता है। स्वामी मुक्तानंद के जीवन, कर्म एवं आचरण के माध्यम से लेखक ने न केवल संतों के जीवन पर प्रकाश डाला है बल्कि आधुनिक समाज के भीतर पनपे अफवाहों एवं अंधविश्वासों की सुई ने किस प्रकार मॉडर्निज़्म के धागे को एक-एक कर उधेड़ दिया है, इसका वास्तविक मंजर उपन्यास के कलेवर के बीच देखने को मिलता है। उपन्यास के फ्लैप पर लिखा गया है - "संत न बाँधे गाठड़ी उपन्यास जीवन और समाज से अभिन्न धार्मिक आस्था, विश्वास, श्रद्धा-भक्ति तथा आध्यात्मिक चेतन के विकास के नाम पर हमारे समक्ष निरंतर गहराते संकट से न सिर्फ अवगत कराता है, बल्कि अंधश्रद्धा के खिलाफ़ हमें जागरूक और सतर्क बने रहने की प्रबल प्रेरणा भी देता है ।"[1]

उपन्यास में संतों के जीवन से सबंधित लगभग सभी सकारात्मक-नकारात्मक आयामों एवं उनके द्वंद्व से उपजे विविध समस्याओं को बेहद ही बारीकी से उकेरने का प्रयास किया गया है। यह सच है कि स्वामी मुक्तानंद जैसे संतों ने अपने आसपास अध्यात्म व ईश्वर का हवाला देते हुए धर्म के आवरण में अकूत धनसंपदा, राजनैतिक और शारीरिक शक्ति का ज़बरदस्त आभामंडल तैयार किया है, जिसके प्रभाव से गरीब गुरबा से लेकर संपन्न व्यक्ति का भी बचना संभव नहीं है । इसी अध्यात्म और धर्माडंबर के शिकंजे पर तंज कसते हुए डॉ. नरेंद्र दाभोलकर कहते हैं- "वर्तमान समय में बापू, दादा, परम पूज्य आदि विशेष नामों से सम्पन्न आध्यात्मिक बाबाओं की चाँदी कट रही है । उनके भक्तों/अनुयायियों की संख्या बड़ी तादाद में है । उनका मूलाधार विषय अध्यात्म है । इसके संदर्भ में एक सरल सीधा विवेचन हमेशा उपलब्ध है । पीड़ित लोगों को आधार प्रदान करना, उनके दुःख-दर्दों से हमदर्दी दिखाकर कृतार्थ समाधान देना । ऐसी कई बातें इस धर्म जागरण और आध्यात्मिक प्रचार में होती है ।"[2] निःसंदेह 'संत न बाँधे गाँठड़ी उपन्यास में इन दृश्यों की स्पष्ट अभिव्यक्ति हुई है। मुक्त लोक आश्रम में ढोंगी गुरुमहाराज मुक्तानंद ने ठीक ऐसे ही धर्म जागरण और अध्यात्म का जाल बिछाया है, जिसमें स्त्री-पुरुष, युवा-वृद्ध आदि स्वेच्छा से जीवनदानी सदस्य बनकर आश्रम को इहलोक का स्वर्ग और मुक्तानंद जैसे ढोंगी बाबा को ईश्वर मान बैठते हैं । लेकिन इसके लिए सिर्फ आश्रमों के प्रभाव मंडल और ढोंगी बाबाओं को ज़िम्मेदार ठहराना अनुचित होगा। वास्तव में ये आश्रम हमारी सामाजिक व्यवस्था के भीतर मौजूद कमज़ोर काठ की लकड़ियों को दीमक की तरह खोखला बनाने का काम करते हैं।

दरअसल, हमारे समाज में जाति व्यवस्था, धार्मिक विभेद, नारी के प्रति असम्मान की दृष्टि तथा धर्म को जीवन का आधार मानने की परम्पराएँ कुछ इस प्रकार हावी हैं कि एक ख़ास वर्ग के लिए उनका लाभ उठाना बहुत ही सहज हो जाता है। उदाहरण के लिए उपन्यास के वंशराखन और जगरोपन का दृष्टांत लिया जा सकता है। रचना में इन दोनों के चरित्र ऐसे धर्मभीरुओं के हैं, जो अपने गाँव के जाति व्यवस्था तथा उसके भीतर के अत्याचारों से तंग आकर आश्रम के प्रभामंडल की ओर खींचे चले जाते हैं। गाँव की कुस्ती प्रतियोगिता में जीतने एवं अन्य जातियों की अपेक्षा गिन-चुनकर एकाध होने के कारण उन्हें आश्रम की ओर मुखातिब होना पड़ता है- "यहाँ आने के बाद तो हम यह आश्रम देखकर दंग रह गए श्रीमान जी। हमें यह इतना

जचा कि हम यहाँ रहने को तैयार हो गए। यहाँ की सबसे बड़ी बात यह श्रीमान जी की यहाँ जातिपाँति को लेकर कोई भेदभाव नहीं। रहने, खाने-पीने और ओढ़ने-पहनने की दिक्कत भी किसी को नहीं।"[3] आश्रम की यही माया वंशराखन एवं जगरोपन सरीखे नवयुवकों को भ्रमजाल में फँसाकर सामाजिक बुनियाद को कमज़ोर कर रही है। तात्पर्य है कि इन परिस्थितियों के मध्य धर्म के प्रति किसी विशेष विचारधारा अथवा आध्यात्मिक सत्य से साक्षात् के बगैर आश्रम में भक्त सरीखा जीवन बितानेवाले लोग न केवल अपना अहित करते हैं बल्कि सदियों की धार्मिक परंपराओं में भ्रम और अंधविश्वास का विष
घोलने का काम करते हैं।

मिथिलेश्वर अपना कथासंसार गाँव के ईद गिर्द ही बुनते हैं। गाँव की संस्कृति हमारे समाज की आधारभूत संस्कृति है। शायद यही कारण है कि लेखक ने भले ही कथावस्तु में उत्तराखंड के पहाड़ी क्षेत्रों को दर्शाया है। लेकिन उसके सभी चरित्र गाँवों से ही जुड़े हैं। इन चरित्रों में सहजता और भोलापन इतना ज़्यादा है कि किसी भी धूर्त व्यक्ति द्वारा उन्हें अपना शिकार बनाना सहज हो जाता है। महत्वपूर्ण बात यह है कि गाँव के इन लोगों की समस्याएँ देश दुनिया और राजनीति से संबंधित न होकर नितांत व्यक्तिगत और पारिवारिक हैं। गाँव में जातिगत झगड़े के कारण कोई आश्रम के संरक्षण में पहुँचता है तो कोई पारिवारिक कलह और विवादों से भागकर मुक्त लोक आश्रम में शरणागत होता है। कभी-कभी जनमानस को आश्रमों की शक्ति पर इतना भरोसा होता है कि वे संवैधानिक न्यायिक व्यवस्था के स्थान पर इन गुरु-बाबाओं और तथाकथित संतों के समक्ष अपने लिए न्याय माँगने के लिए ख़ड़े हो जाते हैं। उपन्यास में किरण जैसी स्त्री पात्र पारिवारिक उत्पीड़न से त्रस्त होकर वैधानिक न्याय की अपेक्षा मुक्त लोक आश्रम की ओर प्रस्थान करती है। इसके साथ ही प्रसिद्ध आई.ए.एस. अधिकारी के.सी.एम. नारायण के उग्रवादियों से गोली लगने के उपरांत इनके परिजन न्यायालय न जाकर सीधे मुक्तानंद के आश्रम में धमक पड़ते हैं। असल में, रचनाकार ने ऐसे पात्रों द्वारा स्पष्ट किया है कि इस अंधभक्ति और अंधश्रद्धा से मोहांध जनमानस की सबसे बड़ी विडंबना भय है। मिथिलेश्वर ने इन विषयों को बेबाक अंदाज़ में व्यक्त किया है, जिससे देश व समाज धर्म, अध्यात्म, मायाजाल एवं साधुओं के वेश में पाखंड़ियों के प्रति सचेतन हो सकें। इसी प्रसंग में जितेन्द्रनाथ मिश्र की उक्ति रही है - "उपन्यास की व्यापकता का परिचायक इसका ऐसा कथ्य एवं तथ्य है जिसके तहत, धार्मिक, आध्यात्मिक क्षेत्र के किसी भी पक्ष को नज़रअंदाज नहीं किया गया है बल्कि गहराई, बेबाकी और सूक्ष्मता के साथ ऐसा सम्यक और सटीक विश्लेषण हुआ है जिसके तहत दूध का दूध और पानी का पानी की तरह धार्मिक, आध्यात्मिक जगत का सत्य और तथ्य, कपट और पाखण्ड तथा योग और भोग सबकुछ स्पष्ट होता चला गया है।"[4] यहाँ तक कि मुक्त लोक आश्रम में गुरु महाराज मुक्तानंद अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिए ऋषि पुत्र मार्कंडेय, पौराणिक कथा महाभारत एवं गीता के ज़रिये भारतीय संस्कृति की दुहाई देकर अपने किले को मज़बूती प्रदान करते हैं।

वर्तमान समय में धर्म के प्रति लगाव का कारण आश्रमों की चकाचौंध और वैभव संपन्नता भी है । मुक्त लोक आश्रम के आँगन में कुछ आगंतुक ऐसे ही बेवजह धार्मिक कर्मकांड के नाम पर पहुँचकर सुख भोग करते हैं, जबकि उपन्यास में कुछ ऐसे भी पात्र हैं, जिनका जीवन संकटों से घिरा हुआ है। उदय नंदन सागर एक ऐसा उदाहरण है, जो पारिवारिक विवादों से उपजे कलह के बाद अपने प्राणों की रक्षा हेतु आश्रम की चौखट पर माथा टेकता है। उसकी कदकाठी और काबिलियत के अनुरूप गुरुमहाराज उसे आश्रम में ड्राइविंग के लिए रख लेते हैं। आश्चर्य है कि आश्रम की उपभोक्तावादी नीति को लोग अपनी सुविधा समझ रहे हैं लेकिन वास्तव में आश्रम उनके प्रति अपने वैभव-विस्तार, सुव्यवस्थित संचालन हेतु उपयोग की दृष्टि रखता है। संजय गौतम का कथन है- "आधुनिक संतों, बाबाओं, माधीशों ने इस सनातन भारतीय संत परंपरा से अलग अपनी पहचान बनाई है। सुखोपभोग और ऐश्वर्य से

भरे हुए मठ एवं आश्रम कायम किये हैं। इन आश्रमों का एक चेहरा वंचित, पीड़ित, सुखी जनता को आस्था का आश्रय प्रदान करना है, लोकोपकारी शिक्षा एवं स्वास्थ्य सेवाएँ प्रदान करना है तो दूसरा चेहरा अपने साम्राज्य को बढ़ाते जाना है।"[5] स्पष्ट है कि बढ़ती जनसंख्या, टूटते परिवार और बाज़ारीकरण से उपजे दबाव ने जनमानस पर अपना गहरा प्रभाव जमाया है। द्रुत गति से इस रोशनी और उपभोग्य वस्तुओं की प्राप्ति के लिए लोग लालायित हैं। उसे आश्रम में उक्त सभी चीजें बहुत कम ही प्रयास में सहजता से प्राप्त होती हैं। अतः ऐसे में ये बेरोज़गार और अर्द्धशिक्षित युवक सबकुछ पाने की होड़ में आश्रमों की ओर अपना रुख कर रहे हैं।

वर्तमान सदी में समाज के एक महत्वपूर्ण हिस्से के रूप में महिलाओं ने अपनी विशेष मौजूदगी से यह साबित किया है कि वे केवल पुरुषों की सहयोगी न होकर मौलिक रूप में उनकी अपनी अस्मिता भी है। इसके बावजूद संतों का दरबार इस बात की स्पष्ट गवाही देता है कि भले ही स्त्रियों ने आधुनिक भेषभूषा और व्यवहार को आत्मसात कर लिया है, किंतु उनके प्रति सोचविचार और नज़रिये में आधी आबादी ने अबतक विशेष कुछ बदला नहीं है। यही कारण है कि इन आश्रमों की सबसे कमजोर शिकार महिलाएँ ही रही हैं। परिवार और समाज से तिरस्कृत अधिकांश महिलाएँ स्वयं के लिए आर्थिक सक्षमता और सम्मान भरी ज़िन्दगी की आस में ऐसे आश्रमों और संतों के मायाजाल में बाहुत जल्दी फँस जाती हैं। एक तरफ इन्हें साध्वी और गुरुमाता आदि नामों से एक अलग ही मर्यादा के छद्म जाल में फाँसा जाता है, जबकि दूसरी ओर समय के साथ उनकी मानसिक अस्मिता और शारीरिक शुद्धता का हरण किया जाता है । कथित उपन्यास में देवी पद्मा, देवी किरण गंगा, देवी चंदा गंगा, देवी अमृता गंगा, देवी रूपा गंगा, देवी शेषाद्रि गंगा, देवी कांति गंगा आदि उदाहरण मौजूद हैं, जो ऊपर से दिखने में सक्षम और समर्थ लगती हैं । ऐसा लगता है कि मुक्त लोक आश्रम ने उन्हें अपने माथे पर बिठाया हुआ है किंतु यह एक भ्रम है, छलावा है । मुक्त लोक आश्रम में ऐसी स्त्रियों को रहने-खाने के एवज में आश्रम से सबंधित नित-प्रतिदिन के कार्यों में भागीदारिता अनिवार्य होती है। स्त्रियों की स्थितियों के संबंध में आशारानी बोहरा का कथन है- "घर हो या बाहर, सांसारिक जीवन हो या आध्यात्मिक जीवन, स्त्री को पिता, पति, गुरु में से किसी एक का तो पल्ला पकड़ना होगा । स्त्री अपनी रक्षा आप नहीं कर सकती । उसे किसी एक का बनकर रहना पड़ेगा और सेवा करके या श्रम करके खाना पड़ेगा। हमारे यहाँ मुफ्त खानेवाली के लिए जगह नहीं, सेवाभावी हो तो निराश्रित को भी जगह देंगे ।"[6] मुक्त लोक आश्रम में स्त्रियों की यही दशा है। उनसे एक ओर आश्रम से संबंधित कार्य संचालक की भूमिका में लिप्त किया गया है, वहीं दूसरी ओर आश्रम को आकर्षक और मनोरम सौन्दर्य प्रदानकर उसके प्रति लोगों में मोह पैदा करने के लिए भी उनका उपयोग किया जाता है। लेकिन यहाँ भी दोष एकतरफ़ा रूप में संत समाज को नहीं दिया जा सकता। इसी संदर्भ में चाणक्य की एक सूक्ति को रेखांकित किया जा सकता है कि जिसकी जीभ पर शहद होता है, वह उसे चाटे बगैर नहीं रह सकता। तात्पर्य है कि चाहे स्त्रियों को आश्रम के भीतर ले जाने के लिए कोई भी परिस्थिति ज़िम्मेदार रही हो, लेकिन एक बार आश्रम के भीतर प्रविष्ट हो जाने पर उनकी इच्छाओं और लालसाओं के पर निकल आते हैं । कम से कम समय में येन केन तौर तरीकों से आश्रम के ऊँचे पदों तक पहुँच बनाने और सत्ता के साथ गँजोड़ करने की लालसा के कारण अपनी सात्विकता का त्याग करना उनके लिए कोई बड़ी बात नहीं रह जाती । मुक्त लोक आश्रम में व्यवस्थित ऐसी ही एक मुख्य साध्वी देवी पद्मा (दीदी मैया) का गुरुमहाराज मुक्तानंद पर यौन शोषण का आरोप मढ़ना कहीं न कहीं साध्वियों की सत्ता-प्राप्ति की लालसा को व्यक्त करता है- "यह सब धन-दौलत और पद-प्रतिष्ठा का चक्कर है श्रीमान् जी । ऐसी चाह सबकुछ करा देती है । उसी ने देवी पद्मा को अंधा बना दिया। यहाँ भी उन्हें कोई कमी नहीं थी । गुरु महाराज के बाद यहाँ सबासे अधिक मान-सम्मान उन्हीं का था। लेकिन अब वे

त्रिशूलपुरम आश्रम हथियाकर स्वयं गुरु महाराज बनना चाहती थीं ।"[7] मिथिलेश्वर ने सत्ता-लोभ, धन-संपदा, ऐश्वर्य एवं सामाजिक प्रतिष्ठा की प्राप्ति हेतु यौवन युक्त साध्वियों की मंशा को चित्रित करते हुए आधुनिक आश्रमों में व्याप्त यौन शोषण-चक्र का पर्दाफाश किया है ।

धर्म की सबसे विविधता भरी परंपरा भारतीय संस्कृति की अपनी निजी थाती है। किंतु हज़ारों वर्षों में गढ़े गए इस महत्वपूर्ण धार्मिक परंपरा को वर्तमान संतों ने अपनी लालसा की कुल्हाड़ी से दो टूक करने में कोई कसर नहीं छोड़ा है । 'संता भाई आई ज्ञान की आंधी रे' कहनेवाले कबीर के जीवन में ज्ञान अपनी परकाष्ठा पर थी और ऐसी मूढ़ता या मन की का जाप लगानेवाले गोस्वामी तुलसीदास ने रामचरितमानस जैसे आख्यान रचने के बावजूद भी अपने ऊपर बौद्धिकता के अहंकार को हावी होने नहीं दिया, जबकि वर्तमान संतों की बात की जाए तो सैंकड़ों तोला सोना बदन पर लादकर अपने प्रवचनों में माया जाप लगाने से नहीं चूकते हैं । ऐसे भी संतों की कमी नहीं है, जिन्होंने विलासिता के प्रत्येक कोने में अपना घर बना रखा है किंतु दूसरों के मन से लालच मिटने का दंभ भरते हैं। आश्रमों में बैठे संतों ने हज़ार-करोड़ की फैक्ट्री और व्यवसाय से आर्थिक जगत में अपनी धाक जमा रखी है । कभी शुद्धता के नाम पर, तो कभी ऑर्गेनिक के नाम पर, कभी पुण्य और परमात्मा की सौगंध खिलाते हुए तो कभी बड़ी व्यवसायिक कंपनियों का ब्रांडिग करते हुए अपने उत्पादों को बेचने का गुण संतों के निजी गुर हैं । यह भी सच है कि वर्तमान संतों ने एक आम पूँजीपति से आगे बढ़कर शिक्षा, स्वास्थ्य एवं परोपकार के कार्यों में अच्छा-ख़ासा सहयोग दिया है। इसके बावजूद यह सहयोग और चैरिटी किस प्रकार केवल प्रसिद्धि प्राप्ति और जनमानस को अपने आश्रमों तक खींचने का जरिया मात्र है, इसे मिथिलेश्वर के आलोच्य उपन्यास के माध्यम से समझा जा सकता है। ऐसे में धर्म, बाज़ार, पूँजी और चैरिटी का यह चतुर्दिक मेल धर्म के रूप को मलिन करने का उपक्रम मात्र ही लगता है! इस प्रसंग में संगीता सहाय लिखती हैं- "धर्म के बढ़ते व्यवसायीकरण ने इसे बाजार का ऐसा बिकाऊ माल बना दिया है, जिसमें लागत लगभग शून्य और कमाई लाखों-करोड़ों में है । आज बहुत सारे कथित बाबाओं, मुल्लाओं, धर्म गुरुओं और उनके चेलों के लिए यह मोटी कमाई का जरिया बन चुका है । ये लोग येन केन प्रकारेण आम लोगों को मूर्ख बनाकर लूटने में लगे हैं ।"[8]

'संत न बाँधे गाँठड़ी' उपन्यास में मिथिलेश्वर ने स्वामी मुक्तानंद जैसे चरित्र द्वारा ईश्वर की मूलभूत अवधारणा से इतर स्वयं को ही भगवान घोषित करने की वर्तमान परंपरा अथवा खुद को ईश्वरीय अवतार बताने की ललक के पीछे राजनैतिक सत्ता के दंभ को दर्शाया है । यह सोच आध्यात्मिक या धार्मिक न होकर शुद्ध रूप से भौतिक और शक्ति के परकाष्ठा के कारण उपजा है । यही कारण है कि चुनाव से पूर्व राम रघुवीर राघव जैसे नेता तथा मंत्री आश्रम में स्वामी मुक्तानंद से विजयी आशीर्वाद लेने पहुँच जाते हैं । आश्रम के गुरु बाबाओं का बड़े नेताओं, मंत्रियों के साथ आतंरिक साँठ-गाँठ और सत्ता सुख के अघोषित आदान-प्रदान को लगभग दो-तीन दशक पहले हम सबने देखा है, परंतु प्रत्यक्ष रूप से सत्ता पर काबिज होने अथवा परोक्ष रूप से सत्ता तक किसी ख़ास को पहुँचाने में निर्णायक भूमिका का निर्वाह संतों द्वारा हो रहा है । राजनीति ने धर्म को व्यक्ति, परिवार और सामाजिक अनुष्ठानों की निजी चहार दीवारी से बाहर निकालकर वोट बैंक और संसद की गलियारों तक पहुँचा दिया है । धर्म अब केवल व्यक्तिगत आस्था का प्रतीक एवं विषय नहीं रह गया है बल्कि धर्म की चर्चा ऊँचे महलों तक होने लगी है । इन सबके पीछे कहीं न कहीं संत समाज का बढ़ता प्रभुत्व है। आज संतों के आश्रमों में नेताओं से लेकर नौकरशाहों का बड़ा फौज सिर्फ उनके आशीर्वाद और प्रसाद के लिए नहीं ख़डा है बल्कि उन्हें भी यह भलीभाँति पता है कि संत महाराज ने अपने चारों तरफ जो आर्थिक और सामाजिक

चक्र ख़डा कर रखा है; सत्ता की सीढ़ियाँ इसी चक्र के इर्द-गिर्द घुमती हैं ।

निष्कर्ष : भाषा तथा शिल्प की दृष्टि से मिथिलेश्वर की यह कृति किस्सागोई संवाद शैली में लिखी गई है । 'संत न बाँधे गाठड़ी' उपन्यास में मिथिलेश्वर ने ग्रामभूमि से सन्निहित आश्रम में प्रयुक्त होनेवाली शिष्टाचार की भाषा का प्रयोग किया है । रामचरितमानस के श्लोकों, लोकोक्तियों एवं मुहावरों सहित अंग्रेजी शब्दों के प्रयोग से उपन्यास रोचक तथा विचारोत्तेजक हो उठा है । इस निष्कर्ष तक पहुँचना बहुत कठिन नहीं है कि रचनाकार ने अपने उपन्यास में वर्णित कथावस्तु द्वारा उसमें चित्रित चरित्रों, घटनाओं-परिघटनाओं को, संवेदनशील संवाद को ऐसे बुना है, जो न केवल संत समाज द्वारा फैलाए गए झूठ, पाखंड, लोभ-लालच और शक्ति-सामर्थ्य के घिनौने सत्य को उजागर करता है, बल्कि समाज की विद्रूपताओं और उनकी कमज़ोरियों की ओर भी ध्यान आकृष्ट करता है । एक देश के रूप में हम तभी मज़बूत हो सकते हैं जब उसकी इकाइयाँ यथा व्यक्ति, परिवार, गाँव-समाज भ्रममुक्त जागरूक और सशक्त होंगे। प्राचीन समय में संतों ने धार्मिक मर्यादा और नैतिक बल के संयोग से इन्हीं इकाइयों को सुदृढ़ करने का कार्य किया था। आज टूटते परिवार, बिखरते रिश्ते, वृद्धों के प्रति उदासीनता, विधवाओं का तिरस्कार, परिवार में संपत्ति के लिए लड़ते भाई-बंधु, धर्म के नाम पर तलवारों के हुँकार तथा समाज में बढ़ते अंधविश्वास व अफवाह तंत्र की महिमा ने धर्म और आश्रम के वैभव के पीछे लोगों को दीवाना बना दिया है । इसके साथ ही बढ़ती बेरोज़गारी, अतिशय तकनीकी प्रेम और संवेदनहीन होती मानसिकता ने आश्रमों की ओर झुकाव पैदा किया है । इस प्रकार आश्रमों ने न केवल संपदा का विशाल समुंदर तैयार किया है बल्कि अनुयायियों की एक ऐसा फौज ख़डी किया है, जो उनके एक इशारे पर भर-मिटने से लेकर मारने तक को तैयार है। इन्हें अपने गुरुओं के विरुद्ध एक भी शब्द सुनना गवारा नहीं है । ऐसे अंधभक्ति से तैयार जनसंख्या के रथ पर तैयार संत न केवल वैभव-विलासिता और शक्ति-सामर्थ्य की गँठड़ी बाँधे फिरते हैं बल्कि भगवावस्त्र में ही सत्ता के सर्वोच्च आसन पर अपनी खडाऊको पदस्थापित करने की पुरज़ोर कोशिश करते हैं।

संदर्भ सूची

1 मिथिलेश्वर, संत न बाँधे गाँठड़ी, लोकभारती प्रकाशन, प्रयागराज, संस्करण 2020, (फ्लैप)

2 दाभोलकर नरेंद्र; मेरा आध्यात्मिक आकलन अंधविश्वास उन्मूलन सिद्धांत (तीसरा भाग), राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण 2015, पृ. 8283

3 मिथिलेश्वर; संत न बाँधे गाँठड़ी लोकभारती प्रकाशन, प्रयागराज; संस्करण 2020, पृ. 255

4 मिश्र जितेन्द्रनाथ, संत न बाँधे गाँठड़ी (खोजी पत्रकार की भूमिका), 'सोच विचार', पत्रिका; वाराणसी, अंक 6, दिसबर 2021, पृ. 20

5 गौतम संजय, 'आधुनिक आश्रम की अंतर्यात्रा' लेख 'जनपथ', पत्रिका (आरा) अंक जनवरी-मार्च 2021, पृ. 69

6 बोहरा, आशारानी, नारी शोषण आईने और आयाम; नेशनल पब्लिाशिंग हाउस, नयी दिल्ली; संस्करण 1982, पृ. 55

7 मिथिलेश्वर; संत न बाँधे गाँठड़ी; लोकभारती प्रकाशन, प्रयागराज, संस्करण 2020, पृ. 267

8. सहाय संगीता; 'अंधविश्वास का जाल' लेख 'जनसत्ता' पत्रिका 29 फ़रवरी; 2020, पृ. 4

♦ सहायक प्राध्यापक
(डबल्यू. बी. ई.एस.)
गवर्नमेंट कॉलेज ऑफ़ एजुकेशन (सी.टी.ई.),
बनीपुर, उत्तर 24 परगना, डाक 743233
संपर्क- 9339275031
gangakoiri@gmail.com

महाभोज में राजनीति

♦ डॉ.सुमा.आई

सार- महाभोज उपन्यास व्यक्तिगत दुख दर्द, अंतर्द्वन्द्व, आंतरिक भावों की अभिव्यक्तियों से भिन्न आदमी की नियति का उद्घाटन है। अर्थ प्रधान युग में सभी मानव मूल्य नष्ट हो गए हैं और मनुष्य स्वार्थी बन गए हैं।

बीज शब्द भ्रष्टाचार, चुनावी हिंसा,जातिवाद, गुडा गर्दी, हत्याकांड

'महाभोज' मन्नू भंडारी द्वारा रचित राजनीतिक उपन्यास है। इसका प्रकाशन सन 1979 में हुआ। इसका नाट्य रूपांतर 1983 में किया गया। इसमें लेखिका ने अपनी कुशल रचना धर्मिता का प्रदर्शन किया है। संपूर्ण उपन्यास का कथानक राजनीतिक है। वर्तमान राजनीति में व्याप्त भ्रष्टाचार, दिखावा ,चुनावी हिंसा जातिवाद आदि का मार्मिक चित्रण मन्नू जी ने इस उपन्यास में किया है। उपन्यास की शुरुआत सरोहा गाँव के हरिजन युवक बिसेसर यानी बिसू की हत्या से शुरू होती है। 'महाभोज' के संबंध में निर्मला जैन का कथन है -"अपन्यास का मुख्य विषय बिसू की हत्या की घटना नहीं, उसके माध्यम से राजनीति के विकृत चेहरे का नकाब उठाना है।"[1] सरोहा गाँव तो शहर से लगभग 20 किलोमीटर दूरी पर स्थित है। पहले तो गाँव शहर से एकदम कटा हुआ था, लेकिन आज स्थिति ऐसी नहीं है। आज गाँव में जो कुछ भी घटता है उसकी खलबली शहर में भी खूब मचती है। इसका कारण सरोहा में होनेवाले उपचुनाव है। "आज तो सरोहा में पत्ते का हिलना भी एक घटना की अहमियत रखता है। महीने भर बाद तो चुनाव है। यों तो चुनाव विधानसभा की एक सीट भर का है, फिर भी है बहुत महत्वपूर्ण, क्योंकि इस सीट के लिए भूतपूर्व मुख्यमंत्री सुकुल बाबू खुद खड़े हो रहे हैं, यानी पिछले चुनाव में हारी हुई पूरी की पूरी पार्टी खड़ी हो रही है- खम ठोककर, ललकारती हुई...। यही कारण है कि आज सरोहा में घटी छोटी-से छोटी घटना भी इसी सीट के साथ जोड़कर देखी-परखी जा रही है। वरना और दिन होता तो क्या बिसू और क्या बिसू की मौत" [2]

इस दारुण घटना का इस्तेमाल सभी लोग अपने-अपने फायदे के लिए खूब करते हैं। मशाल नामक साप्ताहिक पत्र के सहायक संपादक भवानी इस घटना से अपने पत्र की बिक्री बढ़ाना चाहता है। इसलिए खबर सुनते ही वह कहने लगता है- "अरे! वाह! तब तो मामला तूल पकड़ेगा, दो अंकों का मसाला पक्का! तब यह बताओ पुलिस-वुलिस पहुँची या नहीं? पिछली बार तो हद कर दी थी, नौ-नौ आदमियों को ज़िंदा जला दिया और दो दिन तक पुलिस के नाम पर खाकी टोपी तक नहीं दिखाई दी गाँव में।"[3] 'सरोहा में रहस्यात्मक हत्या' नाम से खबर छपवाने पर दा साहब संपादक को अपने ऑफिस बुलाकर उसे सरकारी विज्ञापनों के मोह में फँसाते हैं।

गाँधीवादी मुख्यमंत्री दा साहब और पूर्व मुख्यमंत्री सुकुल बाबू दोनों इस मौत से लाभ उठाना चाहते हैं और दोनों सरोहा में शोक सभा का आयोजन करते हैं।

सुकुल बाबू के साथी अप्पा साहब का कहना है "इस घटना से हमें भी एक मौका मिल रहा है, अपनी इमेज सुधारने का। जनता की याद दाश्त बहुत छोटी होती है। इस बार संतुष्ट हो गए तो आगजनी का घाव भी भर जाएगा..और पार्टी के भीतर जो लोग इमेज को लेकर परेशान हैं, उन्हें भी शांत किया जा सकेगा।"[4]

सुकुल बाबू जो हरिजनों के हिमायती हैं। लेकिन हरिजनों की जिस सहायता की उम्मीद वे रखते थे वैसी सहायता हरिजनों से उन्हें नहीं मिलती है।

आजकल के राजनीतिक नेता समयानुसार और अपने स्वार्थ लाभ के लिए रूप बदलते हैं। अपनी कुर्सी बनाए रखने के लिए किसी को अपनाते हैं और उसी को ही मुसीबत के हाल में चौराहे पर छोड़ देते हैं। गुंडागर्दी का संरक्षण और राजनीति का अपराधीकरण भारतीय राजनीति का अभिशाप बन गया है। गाँव का मुखिया जोरावर

हरिजन टोले में आग लगवाता है। आगजनी की घटना से नौ लोगों की मृत्यु हुई थी। बिसू आगजनी का सबूत इकट्ठा कर रहा था, तथा गाँव के मजदूरों को उनके हक के लिए लड़ना भी सिखाता था। इसी कारण बिसू जोरावर का शत्रु बन जाता है। अपने विरुद्ध आवाज़ उठानेवाले बिसू को जोरावर पहले डराता धमकाता है और फिर विष देकर मार दिया जाता है।

बिसू के दोस्त बिंदा भरी सभा में दा साहब के इस कथन का विरोध करता है कि बिसू ने आत्म हत्या की है। लोगों को शांत करने के लिए एस.पी.सक्सेना को तहकीकात के लिए सरोहा भेजने का आदेश दा साहब डी.आई.जी सिन्हा को देते हैं। सिन्हा अपने प्रमोशन को लेकर परेशान रहता था।

दा साहब राजनीति के दाँव पेंच को अच्छी तरह से समझनेवाला व्यक्ति है। इसलिए वह बिसू के हत्या कांड को दबाने केलिए घरेलू उद्योग योजना का उद्घाटन बिसू के बाप के द्वारा करवाता है। चुनाव के मौके पर जोरावर के हाथों से हुए इस हत्याकांड से दा साहब के उम्मीदवार लखन तो परेशान है। दा साहब उसे उपदेश देता है "धीरे-धीरे चीज़ें अपने हाथ में लो अधिक समझदारी और ज़िम्मेदारी के साथ।"[5] नंदिनी मिश्र का यह कथन दा साहब केलिए सौ फीसदी सही निकलता है - "महाभोज उपन्यास हमारा ध्यान इस महत्वपूर्ण तथ्य की ओर आकर्षित करता है कि सत्ता का मोह नेताओं को कितना अधिक पतनोन्मुख कर देता है और जो लोग आज कुर्सी पर हैं वे ,साम दाम दंड भेद की नीति अपनाकर अपनी कुर्सी बचाए रखने के लिए प्रयत्नशील जान पड़ते हैं न"[6]

दा साहब मुँह में राम और बगल में छुरी रखनेवाला है। सक्सेना तो ईमानदार पुलिस ऑफिसर है। वह बिसू के दोस्त बिंदा से बयान लेता है और उसे मालूम हो गया कि बसू हरिजन एवं गरीबों का मसीहा था। कहीं न कहीं वह जोरावार और दा साहब केलिए भी खतरा था। सक्सेना की बयानबाज़ी महंगी पड़ने पर दा साहब नई कहानी गढने लगता है । उसके अनुसार बिसू और रुक्मा के बीच प्रेम संबंध चल रहा था। इस संबंध को उसका पति बिंदा बरदाश्त नहीं कर सका और इसी कारण से उसने बिसू को मार डाला। दा साहब जोरावर की जगह बिंदा को गिरफ्तार करने तथा सक्सेना को सस्पेंड करने का आदेश सिन्हा को देता है। इस प्रकार बिसू की हत्या के जुर्म में बिंदा को जेल भिजवाया जाता है और डी.आई.जी.सिन्हा को आई.जी बना दिया जाता है। उपन्यास के अंत में हम देखते हैं कि बिंदा की गिरफ्तारी की खुशी में जोरावर जश्न मनाता है। डी.आई.जी सिन्हा के यहाँ भी उनके प्रमोशन के सिलसिले में पार्टी हो रही है। संकट टालने के कारण जमुना बहन दा साहब को केसरिया संदेश खिलाती है। महाभोज शीर्षक को सार्थक बनाता हुआ सभी शोषकों के महाभोज के साथ उपन्यास का अंत होता है।

'महाभोज' की प्रसंशा करते हुए आलोचक मधुरेश हिन्दी उपन्यास का विकास में लिखते हैं- "मन्नू भंडारी का महाभोज अंतर्वस्तु के विस्तार का एक विस्मयकारी और अभूतपूर्व उदाहरण है। महिला लेखक और लेखन की परम्परागत छवि को वह एक झटके से ध्वस्त करता है। भारतीय राजनीति के अमानवीय चरित्र पर इससे तीखी टिप्पणी मुश्किल है। कमलेश्वर के 'काली आँधी' के साथ रखकर इस अंतर को आसानी से समझा जा सकता है। भारतीय समाज में, राजनीतिक जीवन में घुसपैठ करती मूल्यविहीनता और तिकड़म को 'महाभोज' गहरी सलंग्नता के साथ उद्घाटित करता है। आज राजनीतिक व्यक्ति समाज और साहित्य का सबसे बड़ा खलनायक है। दासाहब के दोहरे व्यक्तित्व को, उनके अंदर के शैतान और ऊपर के सतरूप को, मन्नू भण्डारी ने आश्चर्यजनक विश्वसनीयता से साधा है। बिसेसर, बिंदा और हीरा उस दलित वर्ग के प्रतिनिधि पात्र हैं जिनके शव पर राजनीति के गिद्ध जीम रहे हैं।"[7]

राज्य भर हो रहे आततियों से यह तो स्पष्ट हो रहा है कि राजनीतिक पार्टियाँ तो पूँजिपतियों के साथ हैं, किसान, मजदूर इनके लिए केवल वोट बैंक हैं। सत्ता की बागड़ोर

(शेष पृ.सं. 20)

यौन उत्पीड़न की सच्चाई से पर्दा उठाती सुभद्रा कुमारी चौहान की कहानियाँ

♦ डॉ.बीना आर्या

यौन उत्पीड़न जैसी सामाजिक विद्रूपताओं ने समाज में स्त्री के प्रति शारीरिक और मानसिक समस्याओं को बढ़ावा दिया है। ये घटनाएँ स्त्री के शरीर को ही नहीं; बल्कि उसके आत्मसम्मान को भी आहत करती हैं। यौन उत्पीड़न की छोटी से छोटी घटनाओं को कहानी के रूप में प्रस्तुत करके सुभद्रा कुमारी चौहान ने सामाजिक विद्रूपताओं से पर्दा उठाया है

बीज शब्द -स्त्री, यौन उत्पीड़न, आत्महत्या, बलात्कार, सतीत्व, पितृसत्तात्मक दृष्टिकोण

आधुनिक हिंदी काव्य में जिन कवियों की वाणियों ने जनता को प्रेम और देश-भक्ति से भर दिया, उनमें सुभद्रा कुमारी चौहान का महत्त्वपूर्ण स्थान है। सुभद्रा जी ने लगभग 45 कहानियाँ लिखीं, जिनमें समाज के विभिन्न बिंदुओं, विशेषकर स्त्री से जुड़े प्रश्नों को समाज के सामने लाने का सफल प्रयास सुभद्रा जी द्वारा किया गया। सुभद्रा कुमारी चौहान पहली महिला लेखिका थीं, जिन्होंने आजादी से पहले स्त्री सरोकारों से जुड़ी कहानियों को अपनी रचनाओं के माध्यम से रेखांकित करके सर्वप्रथम स्त्री विमर्श का पहल किया। इससे पहले साहित्य के क्षेत्र में पुरुष लेखकों ने भी स्त्री पर लिखा है; किंतु जिस रूप में सुभद्रा जी ने लिखा, वैसा किसी भी पुरुष लेखक द्वारा संभव नहीं हो पाया है। पुरुष लेखन में प्रायः स्त्री प्रश्नों की उपेक्षा ही देखी गयी है। शायद इसका कारण पितृसत्तात्मक सोच हो सकता है।

सुभद्रा जी की कहानियों में औरतों के रोज़मर्रा के संघर्ष, पारिवारिक यातना और सामाजिक संघर्ष को सीधे तौर पर देखा जा सकता है। सामाजिक संघर्ष के रूप में सुभद्रा जी ने समाज में फैली ऐसी स्त्री विरोधी समस्याओं को अपनी कहानियों के कथ्य स्वरूप चुना है जिन समस्याओं की तरफ पहले किसी और का ध्यान नहीं गया, यदि ध्यान गया भी हो तो, किसी ने अपने साहित्य में इन विषयों को इस तरह नहीं उठाया, जिस तरह सुभद्रा जी ने अपनी कहानियों में प्रस्तुत किया। इन्हीं समस्याओं में से एक है यौन उत्पीड़न की समस्या।

यौन उत्पीड़न विकृत मानसिकतावाले लोगों द्वारा किया जानेवाला वह घृणित कर्म है जो पूरे समाज को कलंकित और दूषित करता है। किसी स्त्री की सहमति के बिना उसके साथ यौन गतिविधि को अंजाम देना ही यौन उत्पीड़न कहलाता है। इस समस्या के अंतर्गत बलात्कार, ज़बरदस्ती व दबाव में संबंध बनाना, वैवाहिक बलात्कार, प्रेम के नाम पर बलात्कार तथा किसी की मर्जी के बिना उसे जबरदस्ती छूना जैसे घिनौने कृत्यों को शामिल किया जाता है।

सुभद्रा जी द्वारा रचित कहानियों में यौन उत्पीड़न के मुद्दों को उसी रूप में प्रस्तुत किया गया है, जिस रूप में वे समाज में फैले हुए हैं। स्त्रियों के प्रति बढ़ते दुष्कर्म में शामिल पुरुष, कभी धोखे से तो, कभी प्रेम के नाम पर प्रपंच रचकर, तो कभी लालच देकर और यदि इससे भी बात नहीं बनी तो जबरदस्ती स्त्री को अपनी वासना का शिकार बना देता है। इन्हीं सब यौन उत्पीड़न के कुत्सित रूप को सुभद्रा जी ने अपनी कहानियों में प्रस्तुत किया है 'सोने की कंठी' कहानी लालच और धोखे की कहानी है, जिसमें नायिका बिंदो का बलात्कार उसके पिता की उम्र के व्यक्ति रायसाहब द्वारा किया जाता है। रायसाहब की वासनात्मक प्रवृत्ति को गाँव की सभी औरतें जानती थीं- "इसलिए सुन्दरी की बात तो अलग रखिए कोई कुरूप से कुरूप स्त्री भी उनकी तरफ आँख उठाकर देखने में अपना अपमान समझती थी; इसलिए प्रायः गन्दे मज़ाक करके ही वे अपनी वासना की तृप्ति कर लिया करते थे।"[1] किसी स्त्री को देखकर गन्दे इशारे करना या गन्दा मज़ाक करना

भी यौन उत्पीड़न के अंतर्गत आता है। जिस मज़ाक से पुरुष अपनी कामवासना को तृप्त करता है उससे स्त्री कितनी आहत होती होगी, इस बात का अंदाज़ा पुरुष कभी भी नहीं लगा सकता।

'सोने की कंठी' कहानी की नायिका बिंदो को आभूषणों से विशेष लगाव है, इस बात का जब रायसाहब को पता चलता है तो वह लालच देकर बिंदो का सतीत्व नष्ट करना चाहता है। किंतु बिंदो भारतीय नारी की सोच का प्रतिनिधित्व करते हुए कहती है "मैंने सोचा था कि वे बेटी समझकर मुझे कंठी देना चाहते हैं; परन्तु वे तो सतीत्व के मोल उसे बेचना चाहते हैं। चूल्हे में जाय ऐसी कंठी, मुझे न चाहिए विधाता, सतीत्व कंठी से कई गुना ज़्यादा है।"[2] इन सब के बावजूद भी रायसाहब धोखे से बिंदो का सतीत्व नष्ट कर ही देते हैं।

बिंदो अपने साथ हुए इस दुष्कर्म को चुपचाप सह लेती है, क्योंकि परिवार की मान-प्रतिष्ठा का सवाल उसके सामने आ ख़डा होता है। वह बलात्कारी को दंड दिलाना चाहती है; पर वह समाज की पितृसत्तात्मक मनोवृत्ति को भी जानती है, जिसमें समाज बलात्कारी को तो कभी कुछ नहीं कहता। हाँ! बलात्कार का दोषी स्त्री को ही हराया जाता है। जगदीश्वर चतुर्वेदी लिखते हैं "यौन हिंसाचार या बलात्कार की कोई औरत शिकायत करती है तब सामाजिक माहौल उसकी सबसे बड़ी परीक्षा लेता है। सामाजिक माहौल बलात्कारी के पक्ष में होता है, उसकी इज़्ज़त बनी रहती है और स्त्री की इज़्ज़त चली जाती है। स्त्री की छवि कलंकित हो जाती है, उसे असम्मान की नज़र से देखा जाता है। स्त्री एक ओर जहाँ कलंक के साए में होती है तो दूसरी ओर आतंक के साए में होती है।"[3]

बलात्कार एक ऐसा घिनौना दुष्कर्म है, जिसकी पीड़ा (चाहे वो शारीरिक हो या मानसिक) स्त्री को ही भुगतनी पड़ती है। बलात्कारी कोई बाहरी व्यक्ति नहीं होता; बल्कि स्त्री का परिचित ही होता है। बलात्कार जैसा कुत्सित कर्म करनेवाला पुरुष कभी दोस्त, कभी प्रेमी, तो कभी रिश्तेदार के रूप में स्त्री के सतीत्व को नष्ट करता है। प्रभा खेतान लिखती हैं "उपनिवेशीकरण के दौर में जहाँ स्त्री बाहरी ताकतों से शोषित थी वहीं आज वह अपने घर में, अपने ही कहे जानेवाले रिश्तेदार, भाइयों और बंधुओं से उपेक्षित और पीड़ित है।"[4]

'अँगठी की खोज' कहानी की नायिका वृजांगना भी अपने सबसे विश्वासपात्र मित्र के द्वारा ही छली जाती है। वह अपने मित्र पर पूरा भरोसा करती है, किंतु उसका मित्र उसके अकेलेपन का फायदा उठाकर उसके सतीत्व को नष्ट कर देता है। वृजांगना अपने मित्र के विश्वासघात को नहीं सह पाती। वह समाज से लड़ने के बजाय वह आत्महत्या करना ज़्यादा सही समझती है। वृजांगना का आत्महत्या करना या बिंदो का चुप हो जाने का एकमात्र कारण है समाज की पितृसत्तात्मक सोच, जो बलात्कारी को तो कुछ नहीं कहती, परंतु स्त्री से बेगुनाही का सबूत माँगती है "बलात्कार की शिकार स्त्री से अदालत यह माँग करता है कि वह यह सिद्ध करे कि उसके साथ बलात्कार हुआ है। इस प्रसंग में सिर्फ उसके बयान को ही प्रमाण नहीं माना जाता। उसे संदेह की नज़र से देखा जाता है। उसे साक्ष्य देने, प्रमाण देने के लिए कहा जाता है। अदालत जब ऐसा करती है तो वस्तुतः अपने पितृसत्तात्मक दृष्टिकोण को ही व्यक्त कर रही होती है।"[5]

सुभद्रा जी ने विवाह के बाद होनेवाले यौन उत्पीड़न की सच्चाई से भी पर्दा उठाया है। परिवार के भीतर भी स्त्री पत्नी के रूप में बलात्कार की पीड़ा को सहन करती है। फर्क केवल इतना होता है कि विवाह के बाद होनेवाले

यौन उत्पीड़न को विवाह का जामा पहना दिया जाता है। इसी कारण स्त्री अपने ऊपर होनेवाली शारीरिक और मानसिक पीड़ा को किसी से कह भी नहीं सकती थी। प्रतिदिन के होनेवाले विवाहोपरान्त यौन उत्पीड़न से स्त्री कितना आहत होती होगी, इसका अंदाजा तक पुरुष नहीं लगा सकता। प्रभा खेतान के शब्दों में "स्त्री न केवल यौन उत्पीड़न और क्लेश से भयाक्रांत होती है बल्कि खुद को असहाय समझ प्रायः समझौते के लिए विवश हो जाती है। स्त्री-पुरुष के बीच रात दिन होनेवाले इन झमेलों को हम

यदि सूक्ष्म बलात्कार की संज्ञा दें, तो बात और स्पष्ट होगी।"[6]

विवाह के बाद के इन सूक्ष्म बलात्कारों को सुभद्रा जी ने 'आहुति' कहानी में रेखांकित किया है। कहानी की नायिका का विवाह अपनी उम्र से दोगुनी उम्र के पुरुष के साथ हो जाता है। पहली पत्नी की मृत्यु के बाद नवयौवना पत्नी को पाकर राधेश्याम अपनी कामुकता को वश में नहीं रख पाता। आये दिन कुंतला पर उसके यौन उत्पीड़न बढ़ते ही जाते हैं। पति के इस अनाचार से कुंतला को शारीरिक कष्ट तो होता ही है; साथ ही वह मानसिक वेदना से पूरी तरह आहत हो जाती है। किंतु अपने ऊपर होने वाले यौन उत्पीड़न के खिलाफ वह पति से कुछ नहीं कहती। सामाजिक परम्परा के अनुसार पत्नी होने के कारण पति की किसी भी बात को मना करना उसके पत्नीत्व धर्म के खिलाफ था। क्योंकि "वह उनकी विवाहिता पत्नी हरी सात भांवर फिर लेने के बाद राधेश्याम को तो उसके शरीर की पूरी मॉनापोली सी मिल चुकी थी न।" [7]

विवाह के बाद तो मानो पुरुष को जैसे स्त्री शरीर पर पूरा अधिकार ही मिल जाता है। स्त्री की इच्छा और अनिच्छा के बिना पति जब चाहे, जैसे चाहे स्त्री के शरीर पर अपना अधिकार कर सकता है। कुंतला ही नहीं; बल्कि देश में न जाने कितनी ही ऐसी स्त्रियाँ हैं, जो कि हर आए दिन पति द्वारा किये जानेवाले यौन उत्पीड़न के दंश को झेलती हैं। स्त्री के प्रति होनेवाले इस यौन उत्पीड़न का मुख्य कारण पुरुष की घिनौनी सोच है, जिसके चलते वह स्त्री को केवल देह के रूप में ही सोचता और देखता है। पुरुष में "मौजूद यह कामुकता न तो कोई बनावट है और न ही कल्पना; बल्कि भारतीय समाज में नारी के प्रति निकृष्ट सोच एवं समझ का यथार्थ दस्तावेज़ है।"[8]

समाज में यौन उत्पीड़न के मामले अलग-अलग ढंग से दिखायी देते हैं। अकेली स्त्री का घर से बाहर जाने पर उसे गन्दे ताने देना, उसे छूने का बहाना ढूंढना, उसे वासना से भरी नज़रों से ताकना ये सब पुरुष की निकृष्ट सोच को ज़ाहिर करते हैं। ऐसी ही निकृष्ट सोच को सुभद्रा जी ने अपनी 'अभियुक्ता' कहानी में उजागर किया है। 'अभियुक्ता' कहानी की नायिका अकेले जीवन यापन करने को बाध्य है, किंतु उसकी परिस्थिति को समझने की बजाय समाज का पुरुष वर्ग उसे अपनी हवस का शिकार बनाना चाहता है। आवारा लड़कों से लेकर समाज में प्रतिष्ठित कहा जानेवाला बैरिस्टर तक उसकी मदद के बहाने उसे पाना चाहता है। बैरिस्टर पहले मदद के नाम पर और फिर डरा-धमकाकर उसके साथ ज़बरदस्ती करता है, किंतु नायिका की समझदारी उसे बचा लेती है। वह निडर होकर मजिस्ट्रेट के सामने भी बैरिस्ट की सच्चाई बताकर उसे सजा दिलवाती है।

कहीं धमकी, तो कहीं प्रेम के नाम पर स्त्री के साथ यौन उत्पीड़न जैसा दुष्कर्म किया जाता है। अभियुक्ता भले ही पुरुष की धमकी से न डरी हो, किंतु उसकी माँ अपने आप को मजिस्ट्रेट द्वारा प्रेम के नाम पर किये गये बलात्कार से नहीं बचा पायी। अभियुक्ता की माँ को मजिस्ट्रेट प्रेम के नाम पर गर्भवती कर समाज से अकेले लड़ने के लिए छोड़ देता है और फिर कभी उसकी सुध नहीं लेता।

प्रेम के नाम पर स्त्री से धोखे की कहानी है 'कान के बुंदे'। यह कहानी विवाहेत्तर संबंधों को आधार बनाकर लिखी गयी है। कहानी में विवाहेतर संबंध स्त्री और पुरुष दोनों बनाते हैं, किंतु उसके दुष्परिणाम का फल केवल स्त्री को ही भुगतना पड़ता है। कहानी में वकील शादीशुदा होने के बावजूद भी परायी स्त्री पर कुदृष्टि डालता है और किसी भी कीमत पर वह उसे पाना चाहता है। जब नायिका उसके झांसे में नहीं आती तो वह अपनी कामुकता को प्रेम का नाम देकर अपनी वासना की प्यास बुझाता हैं। वह कहता है "मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ कि मैं हीरालाल को कभी किसी हालत में अलग न करूँगा और तुम्हारा, तुम्हारा जीवन मेरे जीते जी कभी भी बरबाद नहीं हो सकता"।[9] पुरुष की जब वासना की प्यास बुझ जाती है तो वह उसे पहचानता तक नहीं।

प्रेम के नाम पर जब मुंशी की पत्नी गर्भवती हो जाती है तब वकील की पत्नी अपने पति से तो कुछ नहीं

कहती, पर स्त्री को चरित्रहीन कहकर घर से निकाल देती है। एक तरफ प्रेम के नाम पर यौन उत्पीड़न की शिकार भी स्त्री ही हुई और समाज के सामने चरित्रहीन भी उसे ही कहा गया और दूसरी तरफ प्रेम का डंका पीटनेवाले वकील के द्वारा प्रेम के नाम पर किये गये वादे मात्र झूठ के सिवा और कुछ नहीं रह जाते। समाज स्त्री को चरित्रहीन कहकर समाज से बेदखल कर देता है और प्रेम का डंका बजानेवाला वकील चुपचाप तमाशा देखता रहता है। वकील साहब बुत की नाई बने बैठे रहे। उनसे कुछ भी न करते बना। उन्हीं की आँख के सामने जिसे उन्होंने इतना आश्वासन दे रखा था, वही कमला गिरती-पड़ती किसी प्रकार बंगले से बाहर चली गयी।[10]

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि सुभद्रा जी की किसी भी कहानी को देख लीजिये, उन सभी कहानियों में स्त्री प्रश्नों को ही आधार बनाया गया है। सुभद्रा जी ने समाज की पितृसत्तात्मक सोच, स्त्री की कुछ न कह सकने की विवशता और पुरुष की कुत्सित मानसकिता के सच का वर्णन अपनी कहानियों में किया है। स्त्री लेखक होने के बावजूद भी सुभद्रा जी पुरुष मनोविज्ञान को भली प्रकार जानती हैं, इसीलिए तो पुरुषों की निकृष्ट सोच को उन्होंने अपनी कहानियों में रेखांकित कर यह स्पष्ट किया है कि पुरुष अपनी कामुक प्रवृत्ति को अंजाम देने के लिए किस प्रकार के प्रपंच रचकर स्त्री को यौन उत्पीड़न का शिकार बना लेता है।

संदर्भ ग्रंथ

1. सुभद्रा समग्रः सुभद्रा कुमारी चौहान; हंस प्रकाशन इलाहाबाद, संस्करण 2014; सोने की कंठी; पृ.132
2. वही पृ.133
3. स्त्रीवादी साहित्य विमर्श; जगदीश्वर चतुर्वेदी; अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर प्रा.लि. दिल्ली; संस्करण 2000; पृ.245
4. उपनिवेश में स्त्री; प्रभा खेतान; राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली; संस्करण 2003; पृ.124
5. स्त्रीवादी साहित्य विमर्श; जगदीश्वर चतुर्वेदी; अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर प्रा.लि. दिल्ली; 2000; पृ.245
6. उपनिवेश में स्त्री; प्रभा खेतान; राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली; संस्करण 2003; पृ.192
7. सुभद्रा समग्रः सुभद्रा कुमारी चौहान हंस प्रकाशन, इलाहाबाद संस्करण 2014,आहुति; प.65
8. जगत सिंह बिष्ट लेख; सुभद्राकुमारी चौहान का कहानी साहित्य नारी की दशा एवं दिशा; पृ.64
9. सुभद्रा समग्रः सुभद्रा कुमारी चौहान हंस प्रकाशन, इलाहाबाद; संस्करण 2014, कान के बुंदे; पृ.286
10. वही पृ.289

◆ सी-544,पोकट-11,
जसोला विहार, नई दिल्ली-110025
मो-9718181250
ई-मेल- drbeenaarya2010@gmail.com

(पृ.सं.16 के आगे)

तो पूँजीपतियों के हाथ में है। राजनीतिक नेता आजकल राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय पूँजीपतियों के हितों के संरक्षक बनकर रह गए हैं। दलितों के जीवन में स्वतंत्रता के बाद भी बहुत कुछ परिवर्तन नहीं आया है, इन्हीं सच्चाइयों को यह उपन्यास पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करता है।

संदर्भ

1. निर्मला जैन, कथा समय में तीन हमसफ़र, राज कमल प्रकाशनप्रा.लि,दिल्ली;प्र.स2011,पृ.सं.188
2.मन्नू भंडारी, महाभोज (नाटक), राधाकृष्ण प्रकाशन 2001, पृ.सं.17
3.वहीं, पृ.सं.19 4.वहीं, पृ.सं.48
5.वही पृ सं 30
6.नन्दिनी मिश्र; मन्नू भंडारी का उपन्यास साहित्य; माया प्रकारान, लखनऊ; प्र सं 1984; पृ.सं.146
7.मधुरेश; हिन्दी उपन्यास का विकास; लोकभारती प्रकाशन, दिल्ली; संस्करण-2011, पृ.सं20

◆ असिस्टेंट प्रोफेसर
सरकारी वनिता कॉलेज
तिरुवनंतपुरम, केरल राज्य।

मन्नू भंडारी की कहानी 'सज़ा' में न्याय व्यवस्था की विसंगति

♦ डॉ एलिसबत जॉज

हिंदी कथा जगत की अप्रतिम कथाकार श्रीमती मन्नू भंडारी की कहानियाँ संवेदनशीलता और यथार्थपरता की दृष्टि से उच्च कोटि की रचनाएं हैं । वे चिंतनशील,जागरूक और समाजधर्मी लेखिका हैं।मानव जीवन के सूक्ष्म से सूक्ष्म पहलुओं को उजागर करने में वे सफल हुई हैं । नारी जीवन से जुड़ी समस्याओं के अलावा समकालीन सामाजिक, राजनीतिक विषयों के ओर भी उनकी जागरूक दृष्टि गई है। मैं हार गई(1957),एक प्लेट सैलाब, तीन निगाहों की एक तस्वीर(1958), यही सच है (1966),त्रिशंकु (1978) आदि कहानी संकलन उनकी प्रतिभा का परिचायक हैं।

सार- श्रीमती मन्नू भंडारी की एक मर्मस्पर्शी कहानी है 'सज़ा'। इसमें भारतीय न्याय प्रणाली की विसंगतियों पर प्रकाश डाला गया है। यह कहानी 'यही सच है' संकलन में संकलित है।भारतीय न्यायिक प्रक्रिया बहुत ही लंबी और खर्चीली प्रक्रिया होती है। न्याय-प्रक्रिया के विलंब होने के कारण निरपराध व्यक्ति को भी सज़ा भुगतना पड़ता है। आरोपित व्यक्ति को समाज में सम्मान के साथ जीने का हक भी नष्ट हो जाता है। आरोपित व्यक्ति ही नहीं उसके पूरे परिवार, को भी त्रासद स्थितियों का सामना करना पड़ता है। भारतीय न्याय व्यवस्था की विसंगति पर यह कहानी तीखा व्यंग्य करती है।

बीज शब्द : न्याय व्यवस्था की विसंगति, 'सज़ा'

कहानी का मुख्य पात्र एक आरोपित व्यक्ति है जिस पर झूठा इल्जाम लगाया गया था। धन अपहरण का आरोप लगाकर उसे जेल डाल दिया जाता है। कुछ दिनों के कारावास के बाद ज़मानत मिल जाती है। लेकिन अदालत में मुकदमा चलता रहता है। मुकदमे की सुनवाई में कई वर्ष गुज़र जाते हैं। इस बीच परिवार की दशा अत्यंत शोचनीय बन जाती है। मुलज़िम के पन्द्रह साल की बेटी, आशा के अनुभव और अनुभूतियों के ज़रिए कहानी आगे बढ़ती है। पूरे परिवार को किसी न किसी रूप में सज़ा झेलना पड़ता है। आशा के पिता की नौकरी चली जाती है। जीविका चलाने के लिए घर का एक-एक सामान, गहने सब बेचने पड़ते हैं। बच्चों की पढ़ाई बन्द हो जाती है। मुलज़िम की पत्नी बीमार हो जाती ह। बच्चों को रिश्तेदारों के घर में शरण लेनी पड़ती है वहाँ उन्हें मानसिक और शारीरिक रूप से पीड़ाएँ सहनी पड़ती हैं। पाँच साल की लंबी और भयानक यंत्रणा के बाद अदालत मुलज़िम को बरी करता है। लेकिन यह मुक्ति बिल्कुल निरर्थक लगने लगती है। निरपराध व्यक्ति इन पाँच सालों में उतना सज़ा भोग चुका होता है, जितना एक अपराधी को भोगना पड़ता है। परिवार पर मुसीबतों का पहाड़ ही टूट पड़ा था। अपराध से बरी होना या अपराधी साबित होना इस संदर्भ में अर्थहीन हो जाता है।

कहानी में आशा के पिता अपने परिवार और परिवेश से कटकर अकेले छटपटाते हैं । बिना अपराध किये खुद को अपराधी महसूस करते हैं। कहानी के पिता इतना निर्विकार एवं जड़ सा बन जाते हैं कि अपने बच्चों तक से प्यार जताना भूल जाते हैं। पिता का प्यार न पा सकने के कारण बच्चे अंदर ही अंदर घुटते रहते हैं। बालमन की इस व्यथा का मार्मिक चित्रण कहानीकार ने किया है। आशा सोचती है - "क्या हो गया मेरे पापा को? पच्चीस दिनों बाद घर में घुसे और प्यार करना तो दूर रहा, हमारी ओर देखा तक नहीं! बार-बार मन कहने लगा वह मेरे पापा नहीं है। वह ऐसे हो ही नहीं सकते। जेलवालों ने उन्हें बादल दिया। एक अजीब सा भय मन में समाने लगा कि अब शायद पापा कभी प्यार नहीं करेंगे। और सचमुच; उसके बाद मैंने

(शेष पृ.सं. 25)

'सबसे बुरी लड़की' की गवाही

♦ डॉ.प्रकाश.ए

सार-डॉ.नीलमजी ने एक भुक्तभोगी गवाह की हालत के तौर पर अपनी सामाजिकराजनैतिक दृष्टि की अभिव्यक्ति दी है। 'सबसे बुरी लड़की' नामक संकलन की आत्मकथात्मकशैली की कविताएँ नागरिकों को अपने मूलाधिकार के प्रति सचेत करती हैं। कविताओं से संप्रेषित स्वानुभूति की प्रखरता प्रताड़ित नारियों को शोषणहीन जीवनपरिस्थिति के निर्माण की प्रेरणा देती है।

बीज शब्द - 1.रचनाधर्मिता 2.प्रेरक तत्व 3.भुक्तभोगी 4.गवाही 5.विचार प्रणाली 6.संविधान 7.मूलाधिकार

जिनकी कलम को हमेशा दकियाकिनार करने का प्रयास किया गया है उनकेलिए सादर समर्पित कविता संग्रह का शीर्षक है 'सबसे बुरी लड़की', जिसमें युवा कवयित्री डॉ.नीलम की छोटी-सी छप्पन कविताएँ संग्रहीत हैं। हिंदी के दलित साहित्य की नई पीढ़ी के हस्ताक्षरों में डॉ.नीलम का स्थान विशेष उल्लेखनीय है कि अपनी रचनाओं के ज़रिए तत्कालीन समय और स्थिति के थप्पड़ से प्रताड़ित विद्रोही नारी के प्रतिनिधि बनना वे अपना हक समझती हैं।

रचनाधर्मिता का आधार- जन्म लेकर जिस वातावरण में पलती और बढ़ती है वहाँ की विसंगतियों एवं विड़ंबनाओं को कविता की शक्ल के अंतर्गत आत्मकथन की शैली में प्रस्तुत करने की कोशिश सराहनीय है। हिंदी साहित्य से संबंधित उनकी कतिपय रचनाएँ प्रकाशित हो चुकी हैं । 'सबसे बुरी लड़की' संकलन की 11वीं कविता का शीर्षक है, जिसकी पंक्तियों के अध्ययन से ही डॉ.नीलम जी की रचनाधर्मिता के प्रेरकतत्व की समझ पकड़ में आती है। थोपे गए सांस्कृतिक बिंबों पर प्रश्नचिह्न लगाने की प्रवृत्ति उनकी रचना की ख़ासियत है।तथाकथित सभ्यता एवं कुलमर्यादा पर व्यंग्य कसती हुई उनका कहना है कि

मैं बहुत बुरी लड़की हूँ/क्योंकि मैं हँसती हूँ/
सभ्य लड़कियाँ हँसती नहीं/उनकी आँखों में
होती हैं/हया और शर्म/मेरी आँखों की/शर्म और
हया मर गयी है/क्योंकि मैं खुलकर हँसती हूँ
(सबसे बुरी लड़की-पृष्ठ 23)

'रचना की राजनीति' नामक लेख में मैनेजर पाण्डेय ने स्त्री-पराधीनता के विरुद्ध ख़डी होनेवाली मीराबाई का ज़िक्र करके नाभादास की इस पंक्ति को उद्धृत किया कि 'लोकलाज कुलश्रृंखला तजि मीरा गिरिधर भजी'।आगे उन्होंने लिखा कि "अपने भारतीय समाज में अगर कोई स्त्री हँस दे, तो चार लोग एक साथ बोलेंगे कि अरे ये हँसती है। मतलब जिस समाज में स्त्रियों के होंठ खोलने का भी दायरा पहले से तय हो, उसमें स्त्री की पराधीनता कितनी जबर्दस्त है, यह हम सब जानते हैं (आलोचना में सहमति असहमति मैनेजर पाण्डेय, पृ.28)

पराधीनता एवं पारम्परिक बिम्बों के विरुद्ध- हिंदी में स्त्री जीवन की वास्तविकताओं का कलात्मक चित्रण करनेवाली लेखिकाओं एवं नारीमुक्ति के आंदोलन चलानेवाली कार्यकर्ताओं की कोई कमी नहीं है। सामंती संस्कृति के अवशेषों की कुलकानि की आड़ को छेदकर उन्मुक्त रूप से विद्रोहात्मक स्वर उठाने की कोशिश बहुत विरलों ने

की है। डॉ.नीलमजी कविता की शक्ल में अपने जीवन परिवेश की संकीर्णता को आत्मविश्लेषण के तौर पर प्रस्तुत कर रहीं हैं , इसकेलिए उन्होंने किसी भी परम्परागत रचना-पद्धति को नहीं अपनाया। इसलिए कलावाद के हठधर्मी लोग,जो आर्तनाद में भी बाँसुरी का स्वर खोजते हैं ,उनको तसल्ली देकर वे कहती हैं कि

मैं कोई कवि नहीं
जो अपने प्रतीकों और बिंबों से
सब कुछ बयान कर दूँ,

मैं कोई गीतकार नहीं
जो अपने गीतों में
सारी भावनाएं उंडेल दूँ
(मैं कोई कवि नही,पृ;21)

ज्ञान की एकांत साधना करके एक पेशेवर बुद्धिजीवी की पोशाक में मुख्यधारा में बहना आसान है। लेकिन जो किसी वर्ग ,समुदाय और समाज की ज़िंदगी की वास्तविकताओं और आकांक्षाओं की व्यख्या करते हुए उस वर्ग, समुदाय और समाज को इतिहस में अपनी स्थिति समझने और उसे बदलने केलिए संघर्ष करने की प्रेरणा देते हैं वे आवयविक बुद्धिजीवी होते हैं। (मैंजर पाण्डेय भारतीय समाज में प्रतिरोध की परम्परा,पृ124) जीवन के विविध संदर्भों में घटित अवांछनीय घटनाओं के भुक्तभोगी एवं आवयविक बुद्धिजीवी के रूप में डॉ.नीलमजी ने जिस तरह की अभिव्यक्तियाँ दी हैं उनमें स्वानुभूति का ताप भी है ,अनुभव की गहराई भी है और व्यवस्था के प्रति आक्रोश भी है,जो दलित साहित्य के लिए ज़रूरी अवयव हैं(समकालीन हिन्दी -दलित कविता भाग-1- देवचंद्र भारती प्रखर का संपादकीय वक्तव्य पृ9)

जुझारू-रूप की पहचान-भारतीय समाज की वर्तमान दशा और दिशा का आकलन करके डॉ.नीलमजी द्वरा की गयी कवितात्मक-टिप्पणियों में अनेक ऐसे प्रश्न छेड़े गये हैं जो कुलकानियों के बीच छिपे पुरुषसत्तात्मक-दासत्व के विरुद्ध हैं।

हैं नहीं/अब हम अबला/नहीं हैं हम
सत्ययुग के सीता-सावित्री/हैं हम/
आज की नारी.. (प्रतिबंध पृ11)

हमारे संविधान में उपबंधित प्रावधानों के बल पर भारत की नरियों को जीवन के कई स्तरों पर अपनी प्रतिभा दिखाने का अवसर भी प्राप्त हुआ। स्त्री समर्थक विचारधारा प्रचीनकाल से चली आ रही है। एक विशेष दृष्टिकोण के रूप में इस विचारधारा को बढ़ाने में इस शताब्दी के पूर्वार्द्ध में जान स्टुवर्ट मिल,वर्जीनिया उल्फ, सिमोन द बुआ आदि का महत्वपूर्ण योगदान है।

नारी मुक्ति के आंदोलनों में प्रेरणा देनेवाली सावित्रीबाई फूले जैसी पूर्व-पीढियों की विवेकशील विदुषियों की याद वे दिलाती हैं कि..

मन में/तन में ज्वाला/
न लडा हथियार से/न डरा हथियार से/
अपनी बुलंद आवाज़ से/हिला गया संसार को/
न लूटा मंदिर/न मारा पंडित/दे गया /विचारों का/
समता मूलक संसार हमें।(ऐसे थे वो,पृ34)

छद्मवेशी संस्कृति- भौतिकजीवन के विकास के साथ समाज में मौजूद नकारात्मक पक्ष का ह्रास अपनेआप नहीं संभव हो जाएगा। हमारे देश में विकास केलिए जिस नमूने का अनुसरण किया जा रहा है वह पूँजीवादी अर्थव्यवस्था का समर्थन और प्रोत्साहन देने के अनुकूल है। "इतिहास साक्षी है कि पूंजीवादी उत्पादन व्यवस्था के अंतर्गत होनेवाला विकास लिंगआधारित भूमिकाओं और स्त्रियों के शोषण को बढ़ावा देता है।" (हिंदी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली- डॉ.अमृतराय, पृ.387)। भारत में पूंजीवादी अर्थव्यवस्था की आड़ में जो मध्ययुगीन सामंतवादी पुरुषसत्तात्मक प्रवृत्ति छिपी रहती है उसे नीलमजी की रचनाधर्मिता पहचानती है ऐसे सामाजिक परिवेश में नारी को उपलब्ध सुविधाओं को वे संदेह से देखती हैं..

न चाहिए/सदा सौभाग्यवती का वरदान हमको
दे दो,खुला आसमान हमको/हमें उपहार नहीं
चाहिए/साडी और फ्रॉक नहीं चाहिए/खुले
आसमान की उडान चाहिए।
(हमें उपहार नहीं चाहिए,पृ13)

सांस्कृतिक धरोहर के रूप में पुरुष की सोच में लीन अवसरवादी मानदंडों का पर्दाफाश बेहिचक वे करती हैं कि....

एक तल में/रात में चाहिए/रति,उर्वशी,अम्बा/
दिन में चाहिए/सीतासावित्री/धन की लक्ष्मी
वह/लेकिन रहे/विष्णु के पैरों तले/
(बबस योनि-एक ,पृ15)

विचारप्रणाली एवं राजनीतिक दृष्टि- नीलमजी की इन अभिव्यक्तियों में मन को झकझोरनेवाली शक्ति के साथ देश के सिरफिरे साम्प्रदायिक अतिवादियों से संचालित शासन-व्यवस्था में अपने अस्तित्व को टोहनेवाले प्रगतिशील रचनाकार की विचार प्रणाली भी है।

मेरा डिजिटल देश/
जहां आज भी दानेदाने को मोहताज है लोग /
जहाँ उगने से पहले / सूरज डूब रहा है/
जहाँ खिलने से पहले/ फूल मुरझा रहा है/
मेरा देश धर्म/जहाँ मूर्ती की पूजा की जाती है/
X X X X ज़िन्दा इन्सान/किये जाते हैं दफ़्न
(त्यौहारी ,पृ 43)

वर्तमानकालीन शासनव्यवस्था के विरुद्ध अपनी रचना-प्रक्रिया में प्रयुक्त विचरप्रणाली के अंतर्गत डॉ.बी.आर अबेद्कर की राजनीतिकदृष्टि की शक्ति भी समाहित होती है। अपना राजनीतिकपक्ष नीलमजी व्यक्त करती है कि..

सत्ता के/गलियारों में घुसकर/
नीला तिरंगा लहराएंगे/भगवा रंग के/
सीने पर चढ़कर/समता और मानवता का/
'बिगुल हम बजाएंगे' (नीला परचा,पृ48)

सौंदर्यशास्त्र की हठधर्मिता की दृष्टि में नीलम जी की अभिव्यक्तियों में कुछ सपाटबयानी है। इस तथ्य को खुद पहचानती हुई वे लिखती हैं कि..

नज़र-नज़र का नज़रिया है/सौंदर्य जो दिखता है/
X X X X सौम्य सादगी साहस का नज़ारा है/
यही खूबी यहाँ संवारा है।(नज़रिया,पृ78)

प्रतिपाद्यों की विविधता और उद्देश्य -डॉ.नीलमजी के इस संकलन की छप्पन कविताओं के प्रतिपाद्यों में भी वैभिन्य है, जिसके ज़रिए उन्होंने एक भुक्तभोगी के अंतर्मन के विक्षोभ को बिना किसी ज्ञानाडंबर से संप्रेषित करने का साहस उठाया है। उनकी कविताओं के विषय वैविध्य का दायरा इतना व्यापक है कि मेंहती,प्रतिबंध,ओ मनुओं के वंशज,बेबस योनि,तुम्हारी चालाकियाँ, मकडजाल,वैकन्सी,आइकॉन जैसी कविताएँ संकीर्ण पुरुष सत्तात्मक व्यवस्था के विरुद्ध स्त्री के वजूदापन को पुनर्व्याख्यायित करने की कोशिश है। शासन व्यवस्था से असहमति प्रकट करके अपनी राजनीतिक विचारप्रणाली को घोषित करने का श्रम है झूठा रंग,सबको सामान्य बना दो,रामराज्य,उठो संघर्ष करो,आरक्षण, नीला परचम,आदि कविताएँ । माँ और माँ, आने दो आदि कविताओं में पारिवारिक जीवन की आर्द्रता है तो अरमानों का आँचल,दोस्त, सातवाँ आसमान, दो नदी की धार,..आदि कविताओं में प्रेम की पवित्रता,स्त्री-पुरुष संबंध की पारस्परिकता और पारदर्शिता आदि तत्वों को अभिव्यक्त किया है। इन छप्पन कविताओं द्वारा संप्रेषित विचार-प्रणाली को इस प्रकार स्वीकृति दी जा सकती है कि "इसके माध्यम से एक दी हुई सामाजिक व्यवस्था को क्रम देने या बदलने का एक सामाजिक कार्यक्रम भी तैयार किया जाता है। वर्ग-विभाजित समाज में विचारप्रणाली का एक वर्ग चरित्र होता है जिसमें उस वर्ग की अपनी स्थिति और दिलचस्पी प्रतिबिंबित होती है।"(आधुनिक हिन्दी आलोचना के बीज शब्द बच्चन सिंह,पृ.106)

निष्कर्ष -रूप में कहा जा सकता है कि भारतीय संविधान की उद्देशिका के अनुसार हम नागरिक व्यक्ति की गरिमा और देश की अखंड़ता को सुनिश्चित करनेवाली बंधुता को बढ़ाने केलिए दृढ संकल्प होकर तिहत्तर से अधिक साल हुए हैं।इस लोकतंत्रात्मक गणराज्य में न्याय(सामाजिक,आर्थिक,राजनीतिक), स्वतंत्रता(विचार,अभिव्यक्ति,विश्वास,धर्म की उपासना)और समता(प्रतिष्ठा और अवसर की समता) आदि पर विचर-विमर्श करने की प्रेरणा इन छप्पन कविताओं में अभिव्यक्त नीलमजी की गवाही से मिली है, तो उनकी रचना सार्थक एवं सफल है।

संदर्भ ग्रंथ :

(1) सबसे बुरी लड़की-डॉ.नीलम,रश्मि प्रकाशन, लखनउ-226023, पहला संस्करण, वर्ष-2020
(2) आलोचना में सहमति असहमति- मैनेजर पाण्डेय,वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 110 002, प्रथम संस्करण, वर्ष-2013

(3) भारतीय समाज में प्रतिरोध की परम्परा - मैनेजर पाण्डेय, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 110002, प्रथम संस्करण्, वर्ष-2013
(4) समकालीन हिन्दी कविता भाग 1- संदेवेंद्र भारती प्रखर, रश्मि प्रकाशन, लखनऊ, पहला संस्करण, वर्ष-2020
(5) हिंदी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली- डॉ.अमरनाथ,राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पाँचवाँ छात्र संस्करण,वर्ष-2018.
(6) आधुनिक हिन्दी आलोचना के बीज शब्द- बच्चन सिंह, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 110002, आवृत्ति संस्करण, वर्ष 2015

◆ असिस्टेंट प्रोफेसर
हिन्दी विभाग, सरकारी कॉलेज
कार्यवट्टम, केरल राज्य।
मो-9446413027

(पृ.सं.21 के आगे)

कभी उनका प्यार नहीं पाया आज तक नहीं।"[1] मन्नु जी ने पूरी कहानी में पन्द्रह साल की उस बच्ची कीआशा-निराशाओं, दुख-दर्दों, कुंठा-तनावों की बारीकी से चित्रण किया है।

वर्तमान युग की यही विशेषता है कि अपराधी को छूट मिल जाती है, समाज में उसकी प्रतिष्ठा होती है; लेकिन निरपराधी को सज़ा ही प्राप्त होता है, उसके मान-सम्मान का कोई मूल्य नहीं होता। कान्ता मामा का कथन एकदम सही है कि "आज के ज़माने में तो गुनहगार अपने को साफ बचाकर ले जाते हैं। लाखों हज़म करके मूछों पर ताव देते घूमते हैं। फाइल की फाइलों गायब करवा देते हैं। और एक ये है कि बिना गड़बड़ किए जेल भोग रहे हैं।"[2] जब व्यक्ति अपराध किये बिना ही अपराधी बन जाता है तो उसकी सद्भावना भी बदलने लगती है। यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है। ऐसे ही समाज में गुनहगार बनता है। भारी यंत्रणाओं से गुज़र जाने पर आशा सोचने लगती है- "इससे तो पापा सचमुच ही ऑफिस का रुपया मार लेते तो अच्छा होता।-- ईमानदारी करके ही कौन बड़ा सुख मिल रहा है।"[3]

कानूनी प्रक्रिया में होनेवाला विलंब बेकसूर के लिए किसी सज़ा से कम नही है। न्याय में देरी अन्याय ही होता है। कहानी में प्रतिपादित हालत केवल एक व्यक्ति या परिवार तक सीमित नहीं होती। यह कोई काल्पनिक घटना भी नहीं है। हमारे देश में चारों और ऐसी घटनाएँ होती रहती हैं। न्यायालयों में विलंबित मुकदमों की संख्या दिन पर दिन बढ़ती जा रही है। भारत में न्यायाधीशों की कमी और मुकदमों की बढ़ती संख्या के कारण या फिर न्यायालयों की ढीली कार्य-प्रणाली की वजह से ऐसी स्थिति पैदा होती है। इसके अलावा तकनीकी का अभाव, अधिवक्ताओं द्वारा मामले को अटके रखने के लिए जानबझकर विलंब कराना,सुनवाई के बीच लबे अवकाश लेने की प्रथा, न्याय विभाग में संचार की कमी आदि भी इस विलंब के कारण बनते हैं । सन् 2012 में घटित निर्भया केस के विचारण में 7 वर्ष लग गये थे।ऐसे कई उदाहरण ले सकते हैं । इस समस्या का हल निकालना आवश्यक है। इसके लिए, मुकदमे की सुनवाई में कुछ समय सीमा निर्धारित करना अनिवार्य होगा। अमेरिका में यह समय सीमा 3 वर्ष निर्धारित हुआ है। मन्नू भंडारी ने प्रस्तुत कहानी 'सज़ा' के द्वारा राष्ट्र की एक ज्वलंत समस्या की ओर सबका ध्यान आकृष्ट किया है। उन्होंने यह साबित किया है कि महिला कहानीकार भी समाज की समस्याओं के प्रति सतर्क है और उसे सफलतापूर्वक प्रस्तुत कर सकती हैं ।

संदर्भ

1.मन्नू भंडारी, यही सच है(कहानी संकलन)- सज़ा-पृ.61
2.वही, पृ.60
3.वही, पृ.63

◆ असिस्टेंट प्रोफेसर
सरकारी वनिता कॉलेज
तिरुवनंतपुरम, केरल राज्य।

पारिवारिक विघटन की समस्याएँ 'आपका बंटी' में

♦ डॉ.षीबा शरत.एस

श्रीमती मन्नू भण्डारी अपने विषय की बहुलता और वैविध्यता के कारण साहित्य जगत् में अलग पहचान रखती हैं। अपनी कहानियों, उपन्यासों एवं नाटकों में उन्होंने पारिवारिक जीवन, उससे संबन्धित घुटन एवं संत्रास, वैश्वीकरण के कारण बढ़ते हुए स्त्री-पुरुष के अनैतिक संबन्ध आदि विविध विषयों को बड़ी सतर्कता एवं कुशलता के साथ मनोवैज्ञानिक तौर पर विश्लेषित किया है। इनमें सन् 1971 में लिखित आपका बंटी "उपन्यास में बाल समस्याओं के साथ दांपत्य जीवन और पुनर्विवाह की समस्याओं का अंकन है। इसमें माता-पिता के अनमोल के बीच संतान के मानसिक व्यक्तित्व पर पड़नेवाले मनोवैज्ञानिक प्रभाव का चित्रण होता है। शारीरिक और मानसिक अतृप्ति मनुष्य में जिस घुटन और भटकन को उत्पन्न करते हैं उसे भी इस उपन्यास में मनोविश्लेषणात्मक ढंग से उठाया गया है।

बीज शब्द : पारिवारिक विघटन, बाल मनोवैज्ञान

'आप का बंटी' उपन्यास की कथा नौ-दस साल का बंटी नामक एक छोटे लड़के पर आधारित है। उसका पूरा नाम अरूप बत्रा है। पापा अजय कलकत्ते में कहीं मैनेजर है तो माता शकुन कॉलेज में प्रिंसिपल है। माता-पिता के अहं के कारण दोनों अलग हुए। बंटी माँ के साथ है। उसकी ज़िन्दगी का संबल ही ममी है। अजय दूसरा विवाह करता है। नयी पत्नी का नाम मीरा है, उसके चीनू नामक एक बेटा भी है। माँ-बाप की लड़ाई में बंटी उपन्यास के अंत तक पिसता हुआ दिखाई देता है। वह अपनी उम्र से ज़्यादा समझदार लड़का है। अपने ममी को वह हमेशा खुश रखना चाहता है। इस उपन्यास में शुरू से अंत तक कभी-कभी वकील चाचा आता है। उनका चरित्र भी महत्वपूर्ण है। वे शकुन और अमय के बीच की कड़ी है। वकील चाचा ने ही शकुन को दूसरे विवाह की ओर प्रेरित किया। शकुन का पुनर्विवाह शहर के नामी डॉक्टर जोशी से होता है। डॉक्टर के घर में बंटी अकेला होता है। अर्थात् ममी के पुनर्विवाह ने उसे समस्याग्रस्ती कर दिया। अंत में बंटी को लेकर पापा कलकत्ते पर आते हैं। कलकत्ता पर आकर बंटी को लगा कि पापा भी नहीं रहे हैं। पास होकर भी दूर है। पापा, बंटी को अपने पास रखने में असमर्थ बनता है। उसे हॉस्टल पर दाखिल कर देता है।

यह उपन्यास मध्यवर्गीय मानव मन की सशक्त व्याख्या करता है। पारिवारिक विघटन की समस्याएँ बच्चों के व्यक्तित्व विकास में परिवर्तन लाती हैं। माता-पिता को चाहिए कि बालक की सीमित योग्यता के प्रति उचित मनोवृत्ति उत्पन्न करना। डॉ.सीमा सोनकर के शब्दों में "माता-पिता को चाहिए कि वह बालक को समाज से समायोजन करना सिखाएँ ताकि वह कुछ भी देखे अथवा सुने, उसे अपने नैतिक संस्कारों व बुद्धि के बल पर ही विश्लेषित करें।" प्रस्तुत उपन्यास में बंटी एक संवेदनशील बालक है। पापा वकील चाचा द्वारा उसे खिलौने भेजता है। वह जानना चाहता है कि उसके ममी-पापा क्यों एक साथ न रहें? ममी के चेहरे पर गहराती हुई उदासी उसे बेचैन करता है। इसलिए वह ऐसे सवाल नहीं पूछता। उसने ममी को समझाया कि वह ममी को कभी नहीं छोड़ेगा। इतने में शकुन और डॉक्टर जोशी में आत्मीयता बढ़ जाती है। वकील चाचा ने तलाक के बाद शकुन से कहा कि "तुम केवल बंटी की माँ नहीं हो, इसलिए केवल बंटी की माँ की तरह मत जियो, शकुन की तरह जियो। तुम क्यों अपने को इतना बाँध-बाँधकर रखती हो।" शकुन को लगा वकील चाचा उसकी भलाई चाहता है। शकुन को डॉक्टर जोशी में अपना भविष्य और संरक्षण महसूस होता है जो अजय में बिलकुल नहीं है। उसकी सारी बोझ, व्यथा, उलझन सब केलिए डॉक्टर के पास जवाब है। लेकिन डॉक्टर को अपनाने में बंटी विफल बन जाता है। डॉक्टर के घर आकर उसके व्यक्तित्व-विकास में विघटन आता है। वह बेसहारा प्रान जाता है। पहले तो उसे घर में ममी के अलावा फूफी थी। फूफी से कहानियाँ सुनाना वह

पसंद करता था। ममी को वक्त नहीं है, तो स्कूल की बातें सब वह फूफी से बाँटता था। ममी के पुनर्विवाह की बात जानकर फूफी मन ही मन व्यथित हुई। क्योंकि फूफी सच्चे अर्थों में बंटी से प्यार-दुलार करती थी। उसके मन में बंटी की चिंता थी। वह हरिद्वार जाना चाहती है। जाने के पहले उसने शकुन से इतना ही कहा -"जवानी यों ही अंधी होती है बहूजी, फिर बुढ़ापे में उठी हुई जवानी। महासत्यनाशी! साहब ने जो किया तो आपकी मट्टी पलीद हुई और अब आप जो कर रही हैं, इस बच्चे की मट्टी पलीद होगी। चेहरा देखा है बच्चे का? कैसा निकल आया है, जैसे रात-दिन घुलता रहता हो भीतर ही भीतर।" बंटी का एकमात्र सहारा फूफी के जाने पर उसकी आँखों से एक बूँद आँसू न निकला। उसे विश्वास नहीं होता कि फूफी जा रही है। यहाँ डॉक्टर के घर आकर बंटी ने देखा कि ममी डॉक्टर के बच्चे अमि और जोत को ज़्यादा ध्यान देती हैं। इसके प्रतिशोध में वहाँ बंटी आक्रमक बन जाता है। डॉक्टर ने शकुन से कहा कि उसने बंटी को पूरी तरह लड़का नहीं बना दिया है। रोज़ बंटी को लेकर घर में नयी-नयी समस्याएँ उत्पन्न होती हैं। शकुन अपनी नयी ज़िन्दगी को कायम रखना चाहती है। उसे अब डॉक्टर की ज़िन्दगी और खुशी ज़्यादा महत्वपूर्ण हैं। एक दिन शकुन ने पाया कि बंटी अपने पापा के प्रति चिट्ठियाँ लिखता है। शकुन ने निश्चय किया कि यदि बंटी उसके और अजय के बीच सेतु नहीं बन सका तो उसे अपने और डॉक्टर के बीच में बाधा नहीं बनने देगी। कलकत्ता जाने के लिए बंटी को लेकर गाड़ी स्टेशन गयी तो शकुन ने सोचा कि लौटती गाड़ी पर बंटी ज़रूर होगा। क्योंकि ममी के बिना वह नहीं रह सकता। इधर बंटी ने ऐसा सोचा कि उसके जाने की बात सुनकर ममी रोकेगी। गाड़ी में बंटी को न पाकर ममी फूट-फूट कर रो रही थी तो डॉक्टर ने उसे शान्त बनाया। अपने बच्चे को खोकर, निरालंब बनकर शकुन दूसरे के बच्चे को ज़बरदस्त पालती है।

डॉक्टर ने बंटी को लेकर एक लंबे ड्राइव करने को सोचा। क्योंकि डॉक्टर बंटी में परिवर्तन लाना चाहता है। दुर्भाग्यवश वह यात्रा वर्मा के हार्ट अट्टाक के कारण नहीं बन पाया। छोटा बंटी एक डॉक्टर की एमरजन्सी नहीं समझता है। उसने अबनार्मल की तरह व्यवहार किया, जिसके कारण सबके सामने ममी को उसे मारना पड़ा। अगर बंटी डॉक्टर के साथ अकेले यात्रा करे तो डॉक्टर की सुलझाई हुई दृष्टि उसमें सुधार अवश्य लाते। मगर ऐसा नहीं हुआ। परेशानियाँ और जिद्द बढ़ता ही रहा। रचना भोला यामिनी के शब्दों में - "जिन बच्चों की यदि पिटाई की जाए तो वे विद्रोही हो जाते हैं। उनका संपूर्ण व्यक्तित्व ही कुंठित हो जाता है। माता-पिता का ध्यान अपनी ओर खींचने का यत्न करता है। अगर माता-पिता बच्चों के साथ आत्मीयता स्थापित नहीं कर पाते तो बच्चे स्वयं को असुरक्षित व अकेला मानकर हीन भावना से उठते हैं।" ममी की दूरी में बंटी बिखरता है, इसलिए वह कभी-कभी अपनी बंदूक लेकर पेड़ पर चढ़कर ठाय-ठाय करता है। अजय और शकुन अपने बच्चे केलिए एक दूसरे की गलतियों को भूलना नहीं चाहते। इस खंड़ित रिश्ते का दुष्परिणाम बच्चे पर ही पड़ा है। इस उपन्यास का हर वाक्य मर्मस्पर्शी एवं भावोद्दीपक है।

बच्चे के समुचित विकास में माता-पिता दोनों का सामंजस्य महत्वपूण है। घर में अच्छा वातावरण, परिवेश नहीं मिलता तो जीवन में संतुलन लाना कठिन है। पारिवारिक विघटन की समस्याएँ बच्चों को अबनार्मल बनाता है। वे कभी-कभी अवसाद, कुंठा, अकेलेपन में फँस जाते हैं। इसलिए बच्चों के समुचित बौद्धिक व सामाजिक विकास के लिए उनके माता-पिता का एक साथ रहना ज़रूरी है।

सहायक ग्रंथ

1. बच्चों का उपयुक्त पालन-पोषण-सीमा सोनकर, पृ.सं. 76, सृष्टि साहित्य प्रकाशन, इलाहाबाद।
2. आपका बंटी-मन्नू भंडारी, पृ.सं. 110; राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली; वर्ष 1979
3. वही
4. कैसे बनाएँ बच्चों का भविष्य उज्जवल - रचना भोला यामिनी, पृ.सं.60; स्नेह साहित्य सदन, दरियागंज, नई दिल्ली।

♦असोसियेट प्रोफसर
यूनिवर्सिटी कॉलेज,
तिरुवनन्तपुरम, केरल
मो-9447743225
ई-मेल sheebasaraths@gmail.com

कोरोना काल में जड़ता के विरुद्ध सामर्थ्य और आत्मविश्वास की कविता 'प्रार्थना'

♦ नेहा साव

सार : सर्वेश्वर दयाल सक्सेना समसामयिक जीवन-शैली में वास्तविकता के आकांक्षी कवि हैं। उनके कवितासंग्रह प्रार्थना का मूल ध्येय जनमानस में परंपरागत जड़ता के विरुद्ध सामर्थ्य और आत्मविश्वास का संचार करना है। किसी के सम्मुख नत न होकर संकल्पित इच्छाशक्ति के साथ जीवन संघर्ष को अंगीकार करने की क्षमता प्रार्थना कविता का प्राणतत्व है। कोरोना काल में क्वॉरन्टीन् होती व्यवस्था में यह कविता आधुनिक समाज में पारंपरिक निष्क्रियता के स्थान पर विज्ञानसम्मत, संघर्षवान तथा आत्मनिर्भर होने के लिए उद्वेलित करती है।

बीज शब्द : कोरोना काल, जड़ता, ईश्वरीय आस्था, सामर्थ्य, आत्मविश्वास, संघर्ष

सृजनात्मकता वह धर्म है जो अपने समाज और समय के बंधन से अतिक्रमण का सामर्थ्य रखते हुए हर युग के साथ गतिमान और प्रासंगिक बने रहने का माद्दा रखती है। इस दृष्टि से नई कविता आंदोलन के दौर में अपने रचनाकर्म और उन्मुक्त विचारों के धार से समाज को माँजनेवाले सर्वेश्वर दयाल सक्सेना का नाम अविस्मरणीय है। नई कविता में नया क्या है ? इस प्रश्न का उत्तर ढूँढ़ने के लिए सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की कविताओं की ओर मुखातिब होना होगा। इनकी कविताओं में मौजूद जीवन की सत्यता और उसके प्रति गहरी निष्ठा की स्वीकृति सबसे नवीन तथ्य है, जो जीवन को यथार्थ एवं विश्वास की निगाह से देखने की प्रेरणा देती है। हिंदी साहित्य के छठे दशक में कृतिमान हासिल करनेवाले सर्वेश्वर जी आस्था और अंधविश्वास की अति सूक्ष्म पारदर्शी झिल्ली को भंगकर सामर्थ्य तथा आत्मविश्वास के कवि के रूप में प्रतिष्ठित हैं। वस्तुनिष्ठ समाज में राजनैतिक पाखंड, आस्थावादी मनोवृत्ति, धार्मिक लगाव और व्यक्तित्व की अस्थिरता से जूझनेवाले सामान्य जनजीवन की पीड़ा का उत्कृष्ट रूप इनकी कविताओं में प्रतिबिंबित है। अपनी कृतियों के दम पर सर्वकालिक जीवन जीनेवाले सर्वेश्वर दयाल सक्सेना के चर्चित कवितासंग्रह 'प्रार्थना' का सौंदर्यबोध इस कारण प्रशंसनीय है कि उसमें जीवन के प्रति दृढ़ता और आस्था एक अदम्य साहस के साथ मुखरित हुई है।

कोरोना महामारी के इस नाज़ुक समय में मनुष्य शक्ति-सृजन-सामर्थ्य एवं आस्था-अंधविश्वास-अकर्मण्यता के पदचाप से गुज़र रहा है। विरोधाभास के इस अनिश्चित दौर में 'प्रार्थना' कविता संग्रह व्यक्ति तथा समाज में आत्मक्षमता, प्रज्ञा, साहस, समर्थता एवं सकारात्मकता को जिलायें रखने का पक्षधर है। वर्तमान दौर में मानव और समाज के अंतस जगत में सृजनशीलता का ह्रास हो रहा है और इस सृजन-धर्म को संरक्षित करने के क्रम में साहित्य में बहुत कुछ लिखा-पढ़ा जा चुका है। लेकिन प्रार्थना 1, प्रार्थना 2, प्रार्थना 3 और प्रार्थना 4 कविता में उपस्थित परम्परा का विरोध और ईश्वरीय कल्पना से मुक्ति की उत्कंठा रचनाकार के भौतिक एवं आधुनिकतावादी दृष्टिकोण को व्यक्त करता है। मंजु त्रिपाठी का मंतव्य है कि - "सर्वेश्वर जी आधुनिक मनोजगत का विश्लेषण करके उसे अपनी कविता में उतारनेवाले कवि हैं, जिसके लिए अपेक्षित दृष्टिकोण का खुलापन भी उनमें पर्याप्त मात्रा में है । किसी भी पुराने तथ्य को एक नयी मौलिकता के साथ प्रस्तुत कर देना उनकी प्रमुख विशेषता है।"[1] दरअसल, यह कविता परम्परागत ईश्वरीय मिथकों को तोड़ने की एक वैसी ही काव्यात्मक कोशिश है, जैसी कोशिश नीत्से ने 'ईश्वर मर गया है' और कार्ल मार्क्स ने 'धर्म अफीम की तरह है' जैसी दार्शनिक घोषणाओं के साथ की थी । इस कविता में कवि ने न केवल मानवीय शक्ति और सामर्थ्य की महत्ता का निरूपण किया है, बल्कि अप्रत्यक्ष रूप से ईश्वर के अस्तित्व को चुनौती देते हुए बनी-बनाई परिपाटी को तोड़ने का साहस भी दिखाया है । तमाम तकनीकी विकास के बावजूद मनुष्य

वैज्ञानिक सोच से अपने आप को जोड़े रख पाने में असक्षम हो रहा है, ऐसे समय में 'प्रार्थना' कविता का औचित्य बढ़ जाता है । डॉ. विजय शर्मा का मानना है- "दर्द के साथ सर्वेश्वर में करुणा का भाव भी बड़ा गहरा है, इसी से कवि पीड़ा को कम करता है। प्रार्थना-1, प्रार्थना-2, प्रार्थना-3 और प्रार्थना-4 आदि कविताएँ इसके उदाहरण हैं । 'प्रार्थना-एक' कविता में कवि प्रभु से शक्ति नहीं माँगता वरन् जो है उसी में संतोष करता है।"[2] असल में, सर्वेश्वर जी ईश्वरीय सत्ता की असीमता को नकारते हैं, उनकी कविता संतोष नहीं बल्कि विद्रोह की परिभाषा गढ़ती हुई दिखाई पड़ती है-

"मेरे शौर्य और साहस को
करुणामय हों तो सराहिए,
चरणों पर गिरने से मिलता है
जो सुख, वह नहीं चाहिए ।"3 (प्रार्थना-4)

'प्रार्थना' कविता वास्तव में ईश्वर के विरुद्ध एक ऐसी चोट है, जो रूढ़ परम्पराओं को जमींदोज करती है। लीक को छोड़कर अपनी नयी राह गढ़ने का कवायद करती यह कविता एक ऐसी मिशाल है, जिसके आगे तमाम परम्परागत तुकबंध बेज़ान से प्रतीत होते हैं। बात सिर्फ ईश्वरीय मुखौटे को चुनौती देने की नहीं है, बल्कि सामंती आदेशों के खिलाफ की भी है। केवल प्रार्थना ही नहीं, सक्सेना जी की अन्य महत्वपूर्ण कविताएँ यथा 'भेड़िया', 'धीरेधीरे', 'लीक पर वे चले' और 'काठ की घंटियाँ' का स्वर भी परंपरा विरोधी है। वर्तमान मानसिकता की अचेतनता ही जड़बद्ध रिवाज़ों को काँधे पर लादे रखने के लिए उत्तरदायी है । वे जब काठ की घंटियों को बजने के लिए प्रेरित करते हैं, तब वे मानसिक चेतना की जागृति का जोश फूँकते हैं। सदियों से बनी-बनायी रीतियों को सहते-सहते लोग काठ की तरह हो गये हैं, जिनमें न तो कोई स्वर बचा है और न ही चीत्कार, केवल यथास्थिति में बने रहने की गुंजाइश के मध्य कवि ने डटकर आवाज़ बुलंद करने का मन्त्र दिया है । यह सत्य है कि जड़ताओं के विरुद्ध स्वर बुलंद हमेशा हुए। लेकिन उनकी गति इतनी मंद रही कि वे किसी भी विस्तृत सामाजिक विस्फोट का कारण नहीं बन सकें । अतः कवि ने आन्दोलन की रफ़्तार को तीव्रता देने का हुँकार भरा है । इसी तरह 'भेड़िया' कविता के द्वारा भी एक के बाद एक परम्परा के बनने और समय के साथ उसके जड़ होने का आख्यान है, जिसे तोड़ना ही कवि का उद्देश्य है ।

वैज्ञानिक और तकनीकी विकास के सर्वोच्च शिखर को चूमने को बेताब मनुष्य वैज्ञानिक सोच की ज़मीन से धीरे-धीरे कटता जा रहा है । उसके हाथ भले ही अंतरिक्ष की ऊँचाइयों को छूकर अपनी सफलता के परचम को लहराने में कामयाब हो गए हों, लेकिन पैरों तले के वैज्ञानिक धरातल खिसकती जा रही है । जिस आदर्श और सोच के साथ विविध भौगोलिक खोज एवं वैज्ञानिक शोध की रूपरेखा तैयार की गई थी, वह समय के साथ धूमिल हो रही है और केवल इसका वाह्य उद्देश्य अर्थात् भौतिक उन्नति ही विज्ञान का आधार रह गया है। ऐसे में 'प्रार्थना' कविता संग्रह की स्मृति हो आना सहज ही संभव है। ईश्वर रूपी प्रतिमान से कुछ भी और न माँगने की ज़िद तथा संघर्ष रूपी सागर को अकेले के दम पारकर, किनारे तक पहुँचने की उत्कंठा कवि की विद्रोही चेतना का परिचायक है। संस्कृति के आरम्भ से लेकर वर्तमान तक आम जनमानस की समस्त इन्द्रियाँ ईश्वर रूपी छवि को हमेशा अपने मन मस्तिष्क में महत्वपूर्ण स्थान देती रही है। कोरोना के इस असंतुलित दौर में जन सामान्य ईश्वरीय अराधना के नाम पर कर्तव्य विमुख बने हुए है। कभीकभी तो ऐसा प्रतीत होता है कि ईश्वरीय आधार के बिना जीवन की एक भी गति असंभव है। यह सच है कि ईश्वर का भ्रम मन को शक्ति और संबल प्रदान करता है, लेकिन मात्र इसी वजह से सत्य से मुँह फेरना कहाँ तक न्यायोचित कहा जा सकता है? इस सन्दर्भ में प्रार्थना कविता संग्रह सत्य को स्वीकार कर ईश्वरीय सत्ता को चुनौती देती है । इस संग्रह में कवि की मानसिकता मानवीय बुनियाद के धरातल पर समर्थताबोध की इमारत को ख़डा करना है, जिससे नए समाज की परिकल्पना संभव हो सके, जहाँ हर चुनौती के लिए मनुष्य आत्मबल एवं धैर्य का दामन थामे इतना समर्थ हो कि जीवन की तमाम बाधाओं को स्वयं लांघ सके । ऐसे में ईश्वर की काल्पनिक सत्ता के मोह में क्यों पड़ा जाए? डॉ.कपिल देव पाण्डेय का कथन है- "कवि सर्वेश्वर की विश्वदृष्टि का तकाजा यह है कि सामाजिक-आर्थिक, राजनीतिक-सांस्कृतिक सभी द्वंद्वों और संघर्षों को समाहित कर चाहे इसके लिए

क्रांति ही क्यों न करनी पड़े नए समाज का निर्माण करें, नए मनुष्य को प्रतिष्ठित करें और नयी वैज्ञानिकदृष्टि को विकसित करें ; जिसकी इयत्ता में लोकोत्तर या धार्मिक भ्रम से अलग सहज सरल, श्रमशील और ईमानदार मानवता की उच्च कोटि का विकास हो।"[4]

कर्तव्य विमुखता के साथ सफलता के ऋंग पर पहुँचने की लालसा भी ईश्वरीय कल्पना को जन्म देने में सहायक रही है । सक्सेना जी ने प्रार्थना के माध्यम से इस मिथ को तोड़ने का प्रयास किया है कि जीवन सिर्फ सत्यम, शिवम् और सुन्दरम् का योग है । उनका दृढ़ विश्वास है कि जीवन और संसार में जो कुछ भी बुरा और असुंदर है वह भी जीवन का उतना ही महत्वपूर्ण अंग है, जितना कि अच्छा और सुन्दर । सबकी अपनी-अपनी बिसात और अपना-अपना वजूद है । अपनी निजी विशिष्टताओं को त्यागकर किसी अन्य के विशेषणों से स्वयं को अलंकृत करना हास्या स्पद ही माना जाएगा । प्रकृति कभी भी अपनी विशिष्टता से समझौता नहीं करती और अपनी कमियों खामियों में अपनी पूर्णता का अनुभव करती है । कविता की पंक्तियाँ हैं-

"कब माँगी गंध तुमसे गंधहीन फूल ने
कब माँगी कोमलता तीखे खिंचे शूल ने"[5] (प्रार्थना-1)

प्रकृति की निगाह में यदि गंधहीनता और तीखापन उसका अभिन्न अंग हैं तो मानव सन्दर्भ में उसकी पेकुलिअरिटी को हेय दृष्टि से देखने के पीछे कौन-सा तर्क है ? अतः कहा जा सकता है कि सबको उसकी पूर्णता में सहज रूप से स्वीकार करना ही जीवन की पूर्णता है, इसलिए काल्पनिक ईश्वरीय प्रतिरूप से किसी और तत्व की याचना अप्राकृतिक है। जीवन-संघर्षों के अनगिनत प्रहारों से मनुष्य अपने सकारात्मक इरादे, लगन तथा कर्म के प्रति विश्वास से विजय प्राप्त कर सकता है। किन्तु अपने आतंरिक शक्ति और साहस को बिसारकर ईश्वर के प्रति नत होने में मनुष्य आज संघर्षों से मुक्ति का आभास करता है। यदि मानव अपनी शक्ति और सामर्थ्य को ज्ञान के आलोक में परखना शुरू करे तो निश्चित ही मनुष्यजाति द्वारा बनाए गए धर्म, रीति, नीति, जाति और ईश्वर के अस्तित्व पर प्रश्न चिह्न लग जाएगा। बौद्धिकता के दम पर प्रकृति के रहस्य को जाननेवाला मनुष्य अपनी दुर्बलताओं से निजात पा सकता है, किन्तु ईश्वरीय काल्पनिक भय के कारण वह ईश्वर रूपी अव्यक्त सत्ता के प्रति नतमस्तक हो रहा है । इसी मोहांधता के प्रति कटाक्ष करते हुए सर्वेश्वर दयाल सक्सेना जी शक्तिपूर्वक घोषणा करते हैं-

"तुमने जो दिया, दिया,
अब जो है, मेरा है ।"[6] (प्रार्थना 1)

सर्वेश्वर जी की कविताओं में एक अदम्य ऊर्जा और उत्साह है । वे किसी भी नकारात्मक तथ्य के मध्य सकारात्मक सोच को जीवंत करते हैं । कह सकते हैं कि जिसकी सोच में सकारात्मकता विद्यमान है, वह न तो किसी से डरेगा और न ही किसी के आगे झुकेगा । भारतीय संस्कृति ने ईश्वर के नाम पर एक ऐसे अकर्मण्य मानसिकता को जन्म दिया है, जो धर्म और संस्कृति के नाम पर याचक बने रहने में ही संतुष्ट होता है । डॉ. कपिल देव पाण्डेय की उक्ति है- "यहाँ ईश्वरीय आस्था नहीं है, बल्कि मात्र ईश्वराश्रित कर्महीनता है, जो मध्यकालीन ईश्वरीय मूल्य के विरुद्ध आधुनिक मानवीय मूल्य की स्थापना करता है ।..."[7] अन्य शब्दों में कहें तो हमने अपनी अकर्मण्यता और कायरता को धर्म, सहिष्णुता और विनम्रता का लबादा ओढ़ा रखा है । इसी लबादे के कारण आज मानव कोरोना महामारी में अंध-बधिर बना बैठा है जिसकी आड़ में समाज के ढोंगी अधर्म और असहिष्णु कृत्यों को करने से बाज नहीं आ रहे हैं। ऐसी प्रतिकूल परिस्थितियों में प्रार्थना कविता इन तमाम जड़ताओं से चुनौती लेता हुआ वास्तविकता से साक्षात्कार करता है एवं जीवन में विद्यमान खीझ, निराशा, आक्रोश, घुटन आदि तमाम मनःस्थितियों को स्वीकार करता हुआ मृत्यु का वरण करना श्रेयस्कर मानता है

"अपने साहस को भी मैं कंधों पर लादे
चलता जाऊँ जब तक तू यह तन पिघला दे
अमर सृजन तेरे हों
मृत्यु वरण मेरे हों "[8] (प्रार्थना 2)

यह काव्यकृति थोथे आदर्शों और कोरी कल्पनाओं को मूल्यहीन सिद्ध करती है । वर्तमान परिदृश्य में अगर कविता का मूल्यांकन किया जाए तो कवि की दूरदर्शिता

स्पष्ट हो जाती है। देश के भविष्य के रूप में बच्चों और युवाओं की बात की जाती है । शिक्षा ज्ञान का आधार है और ज्ञान मन में समर्थताबोध लाती है। लेकिन दिन के शुरू में ही बच्चों को हाथ जोड़कर किसी काल्पनिक अदृश्य शक्ति के समक्ष नतमस्तक कर दिया जाता है, जहाँ वे तथाकथित दयानिधि की कृपा पर ही ज्ञान के लिए आश्रित हो जाते हैं । यह परम्परावादी विचार क्या स्वयं के प्रति अविश्वास पैदा नहीं करता, क्या यह प्रार्थना भविष्य में माँगने की प्रवृति का प्रसार नहीं करती और क्या यह याचना कर्मविमुखता का चिह्न नहीं है ? ये तमाम प्रश्न इस कोरोना काल में प्रासंगिक बने हुए हैं। यह सच है कि जिन पेड़ों में फल लगते हैं उन्हीं पेड़ों की शाखाएँ झुकती हैं, लेकिन आज हम किस तरह के बच्चों और युवाओं के पौधों को रोप रहे हैं, जिनमें फल लगने के साथ ही उनकी शाखाएँ ही नहीं, तने और जड़ भी धराशायी हो रहे हैं । स्कूलों, कॉलेजों में हम बच्चों को कैसी शिक्षा दे रहे हैं ? कक्षा आरम्भ होने के पहले ही उन्हें प्रार्थना गीतों के माध्यम से याचक की भाँति भाग्यवादी होने की सीख दी जा रही है। इन जीर्ण होते मूल्यों को पुनर्परिभाषित करने की आवश्यकता है । इसलिए सर्वेश्वर जी दृढ़ता के साथ स्पष्ट कहते हैं कि हमें किसी भी ईश्वर की आवश्यकता नहीं हैं और न ही उसकी शरण की

" रोकूँगा पहाड़ गिरता
शरण नहीं माँगूँगा
नहीं-नहीं प्रभु तुमसे
शक्ति नहीं माँगूँगा ।"9 (प्रार्थना 1)

इसके विपरीत आज सर्वत्र ही अपनी समस्याओं से भागने और ईश्वर की शरण की तलाश ही मूल उद्देश्य रह गया है । कुकुरमुत्ते की भाँति यत्रतत्र सर्वत्र उग आये आश्रम इसके उदाहरण हैं, जहाँ आध्यात्म, मोक्ष और ईश्वर जैसे बेतुके और निरर्थक शब्दों के मायाजाल में फँसकर तथाकथित बाबाओं द्वारा मतिभ्रम करने की प्रक्रिया अनवरत ज़ारी है। अपनी सक्षमता और समर्थता के प्रति घोर अविश्वास ही इसका मूल कारण है। लेकिन इफ़्फ़त असग़र के शब्दों में कहें तो- "कवि अपने साहस को जीवित रखना चाहता है और अपनी असफलताओं, सीमाओं के साथ भरकर, बिखरकर अपनी आतंरिक शक्ति अर्जित करना चाहता है..."[10] इस तथ्य से जितना ज़्यादा हो सके खुद को दूर रखने का मोह हम छोड़ नहीं पाते हैं और अंततः वैज्ञानिक दृष्टि पर ही व्यंग्य करते हैं ।

निष्कर्ष : स्पष्ट है कि कवि की वैचारिक दृष्टि ही क्रांतिकारी और विद्रोही है। उनका विद्रोही चरित्र ही उनकी समस्त कविताओं का केंद्र है। उनके लिए न तो पुरातनता महत्पूर्ण है और न ही नूतनता के नाम पर जड़ता। वे मूलतः साहस और विश्वास से लबरेज होकर समस्त जड़बद्धताओं का माखौल उड़ाते हैं । वे केवल व्यंग्य और आलोचना के लिए उपक्रम नहीं रचते, बल्कि अपने आदर्शों में भी गंभीर हैं, अन्यथा 'प्रार्थना' जैसी कविता का सृजन ही असंभव था। आज सम्पूर्ण विश्व कोरोना ग्रस्त है। ठप्प पड़ती जीवन की धारा में निराशा और आशा आँखमिचौली खेल रही हैं। इस आशा-निराशा के आधार आस्था-अनास्था, आस्तिकता-नास्तिकता, और आडंबर-विज्ञान से पिरोए हुए हैं । विज्ञान अपनी पूरी बौद्धिकता के साथ तर्क और प्रमाण के आधार पर कोरोना महामारी से जंग लड़ रहा है, वहीं कदम-कदम पर कोरोना और मानव सामर्थ्य के शह और मात से परे ईश्वरीय आस्था के बिगुल बजाते लोग खड़े हैं । वे ईश्वरीय चमत्कार के लिए प्रतीक्षित हैं । ईश्वरीय भक्ति की डफली बजाते लोगों की मानसिकता में कोरोना संक्रमण के फैलते प्रकोप को ईश्वरीय आशीर्वाद से ही नष्ट किया जा सकता है । ऐसे में सर्वेश्वर जी का 'प्रार्थना' कविता संग्रह जड़ आस्थावादी मनोवृति के मकड़जाल से मुक्ति का राग बिखेरता है। यह नास्तिकता नहीं सामर्थ्य और आत्मविश्वास की पहचान की कविता है । वर्तमान समाज अति अंधभक्ति, चापलूसी, भ्रष्टाचार और धार्मिकता के फंदे में कैद है। मंदिर मस्जिद जैसे पावन स्थलों में धर्म के नाम पर साम्प्रदायिक उन्मादों का ज़हर उगला जा रहा है । सामान्य जनगण मन अपने हालात परिवर्तन के लिए ईंट पत्थरों से बने दरों दीवारों पर मत्था टेकने को बाध्य हैं, सबके पीछे सिर्फ एक वजह है 'ईश्वर के काल्पनिक अस्तित्व की परिकल्पना !' इतना अवश्य है कि अति-बौद्धिकता के इस युग में धर्म, आस्था, ईश्वर, अल्लाह और मंदिर-मस्जिद आदि, मनुष्य की तार्किक,

नैतिक एवं बौद्धिक विवेक को कसने के हथियार मात्र बन गये हैं जहाँ लोग अपनी प्रज्ञा, क्षमता को तिरोहित कर संवेगात्मक धारा में बहना अपना परम कर्तव्य स्वीकार करते हैं । सर्वेश्वर दयाल सक्सेना ने इस आधार की आवश्यकता से इन्कार करके ईश्वरीय स्वरूप को महत्वहीन कर दिया है। अतः इस कोरोना काल में ईश्वर, प्रार्थना और आस्था की जड़ता से मुक्ति के रूप में इस कविता को याद किया जाना ज़्यादा समीचीन होगा ।

सन्दर्भः

1. त्रिपाठी, मंजु; सर्वेश्वर दयाल सक्सेना और उनका काव्य संसार; विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी; संस्करण 2001, पृ. 59.
2. शर्मा, विजय; सर्वेश्वर दयाल सक्सेना का काव्य; सौरभ प्रकाशन, दिल्ली; संस्करण 2007; पृ. 45.
3. सक्सेना, सर्वेश्वर दयाल; कविताएँ दो, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली; संस्करण 1978; पृ. 133.
4. पाण्डेय, कपिल देव; सर्वेश्वर की कविता; प्रिय साहित्य सदन, नई दिल्ली; संस्करण 2010; पृ. 190191.
5. सक्सेना, सर्वेश्वर दयाल; कविताएँ दो; राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली; संस्करण 1978; पृ. 130.
6. वही, पृ. 133.
7. पाण्डेय, कपिल देव; सर्वेश्वर की कविता; प्रिय साहित्य सदन, नई दिल्ली; संस्करण 2010; पृ. 47.
8. सक्सेना, सर्वेश्वर दयाल; कविताएँ दो; राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली; संस्करण 1978; पृ. 131.
9. वही, पृ. 130.
10. असग़र, इफ़्फ़त; सर्वेश्वर दयाल सक्सेना के काव्य में सामाजिक चेतना, नेहा प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2004, पृ. 97.

♦ शोधार्थी, हिंदी विभाग
काज़ी नज़रुल विश्वविद्यालय
आसनसोल, (पश्चिम बंगाल)
ईमेल nehashaw468@gmail.com
मो. 08646843757

'आपका बंटी' उपन्यास में चित्रित बाल मनोविज्ञान

♦ डॉ.धन्या.एल

हिन्दी कथा साहित्य में मन्नू भंडारी का नाम विशेष उल्लेखनीय है। मन्नूजी ने भारतीय नारी, समाज, देश आदि समस्याओं को यथार्थ रूप में चित्रित करके अनेक ज्वलंत मानवीय प्रश्न को उठाया है। 'आपका बंटी' में बाल मनोविज्ञान के प्रमुख पहलुओं को उभारा गया है। पति-पत्नी के संबंध विच्छेद की समस्या से जूझता बंटी की मार्मिक दिशा को 'आपका बंटी' उपन्यास में चित्रित किया गया है।

बीज शब्द : कालजयी उपन्यास, बाल मनोविज्ञान, आधुनिकता

'आपका बंटी' बाल मनोविज्ञान पर लिखा गया मन्नू भंडारी का प्रौढ़ उपन्यास है। उनकी 'बंद दरवाज़ों का सच' नामक कहानी का विकसित रूप है सन् 1979 में प्रकाशित 'आपका बंटी'। सन् 1970 में लिखा गया यह उपन्यास दर्जनों संस्करणों व अनुवादों के बावजूद आज भी वैसे ही लोकप्रिय है। 'आपका बंटी' एक कालजयी उपन्यास है। इसे हिन्दी साहित्य की एक मूल्यवान उपलब्धि के रूप में देखा जाता है। माँ-बाप के झगड़े के मध्य एक बच्चे का बचपन अपने माता-पिता के अलग न होने की कामना में गुज़रता है। इस उपन्यास में स्त्री-पुरुष संबधों की आधुनिक भावनाओं का चित्रण किया गया है।

साहित्य में मूल्य और आदर्श तथा मानदंड युग की आवश्यकता के अनुसार बदलते और निर्मित होते हैं। सामाजिक परिवर्तन की दिशा में सबसे बड़ा परिवर्तन संयुक्त परिवारों के टूटने और एकल परिवारों की इच्छा में देखा जा सकता है। संयुक्त परिवार टूटने से व्यक्ति अनेक स्तरों पर अलग हो गया है। आधुनिकता की आँधी में बहते हुए, अपने व्यक्तित्व और अहं की स्वतंत्रता के नाम पर आज हमारे परिवारों में

आपका बंटी में चित्रित स्त्री-विमर्श

♦ डॉ.रीनाकुमारी.वी.एल

सार - मन्नू भण्डारी एक ऐसी गणमान्य लेखिका हैं, जो अपनी नारी सुलभ मनोविकारों को किसी रुकावट के बिना पाठकों के सामने प्रस्तुत करती हैं । अपने नारी सबंधी दृष्टिकोण और आधुनिक संस्कार से युक्त नारी के प्रस्तुतीकरण में वे अपने समकालीन लेखकों से बिल्कुल भिन्न रहती हैं । अत्यंत आकर्षक शैली, काव्यात्मक अभिव्यक्ति और रचना के प्रति लगाव इन सबका मिलाजुला रूप है उनका बहुचर्चित उपन्यास 'आपका बंटी'।

माता-पिता के बीच का प्रेम बच्चे के सर्वांगीण विकास का आधार बनता है तो दाम्पत्य जीवन के तनाव बच्चे के लिए त्रासदी उत्पन्न करते हैं । मन्नू जी का मानना है कि आजकल विवाह स्त्री के लिए संबंध मात्र न रहकर कभी-कभी बेड़ी भी बना जाता है। आपका बंटी एक नौ साल के बच्चे की घायल संवेदनाओं की कहानी है और समाज में अपनी अस्मिता, अपनी जगह बनाने की कोशिश करनेवाली एक स्त्री की कहानी भी है।

बीज शब्द -स्त्री-विमर्श, स्वार्थ एवं संवेदना का ह्रास, अस्मिता, बोल्डनेस ।

आजकल साहित्य जगत में जिस विषय की सर्वाधिक चर्चा हुई है, वह है स्त्री-विमर्श । स्त्री साहित्य वास्तव में स्त्री की अनुभूति का साहित्य है । दो शब्द हैं स्त्री साहित्य और स्त्रीवादी साहित्य । स्त्री साहित्य वह है जिसकी रचना स्त्री ही करती है पर स्त्रीवादी साहित्य की रचना स्त्री भी कर सकती है और पुरुष भी । स्त्री साहित्य में स्त्री की अस्मिता और अनुभवों को केन्द्रीय महत्व दिया जाता है ।

साहित्य में स्त्री-विमर्श का सबसे पहला कार्य स्त्री की चेतना का विकास है । आधुनिक काल में कथा साहित्य से स्त्री साहित्य का प्रारंभ होता है । स्त्री की अस्मिता को राष्ट्र की अस्मिता के रूप में प्रस्तुत किया गया है । बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में स्त्री कथा लेखन ने एक नयी पहचान बनाई है । मन्नू भंडारी हिन्दी की महिला कहानीकारों में अग्रणी कथाकार हैं । उनके व्यक्तित्व के नारी मन पढ़ने की अद्‌भुत क्षमता है, जिसने उनके साहित्य को अद्‌भुत शक्ति प्रदान की है । स्त्री के मन एवं ज़िंदगी के प्रामाणिक यथार्थ को, स्त्री चरित्रों की दोहरी स्थिति को तथा मूल्यपात को वैयक्तिक दृष्टिकोण से मन्नू भंडारी ने रूपायित किया है । स्मिता तिवारी के शब्दों में- "मन्नू जी के कथा साहित्य का फलक स्वातंत्र्योत्तर भारत में समाज की निरंतर परिवर्तित परिस्थितियाँ हैं, जो कई अर्थों में विकृतियों, विषमताओं और ह्रासों के स्रोत बन गयी हैं। इस अनुकूल तथा ह्रासोन्मुख परिवेश में समाज, परिवार, स्त्री-पुरुष, माता-पिता, पति-पत्नी, स्वामी-सेवक, नेता-चमचे, छुटमईये-बड़मईये, बिचोलिये-दलाल, जी हुजूरिए-पिछलगुए, सभी के आदर्शों, मूल्यों, मानदण्डों, संबधों, व्यवहारों में आधारभूत परिवर्तन हुए हैं, मूल्य बदले हैं, कीमतें बदली हैं, मानसिकता बदली है और बदला है ज़िंदगी और समाज के प्रति दृष्टिकोण। फलस्वरूप मन्नू जी की कृतियाँ समाज की विकृतियों, विषमताओं, जटिलताओं तथा कुंठाओं का सटीक और चुभता हुआ चित्र प्रस्तुत करती हैं । उन्होंने राजनीति, धर्म, संस्कृति, संस्कारों, परंपराओं से निःसृत पाखंडों, प्रतारणाओं का निर्ममता से उद्घाटन किया है । मानसिक स्थितियों, अंतर्द्वंद्वों, अंतर्विरोधों, कुंठाओं, मनोविकारों तथा वर्जनाओं का निरूपण करने में उन्होंने सिद्धहस्तता दिखाई है।"[1]

"नारी विमर्श के रूप में मन्नू भण्डारी ने अपनी कहानियों एवं रचनाओं में नारी के किसी विशिष्ट

रूप को खड़ा नहीं किया है । किन्तु वे स्वीकार करती हैं कि बार-बार जिस स्त्री को मैं ने अपनी रचनाओं के द्वारा पहचानना चाहा है वह है आतंरिक संस्कारों, भावनाओं और संवेदनाओं के साथ बाहरी स्थितियों एवं दबावों को झेलती, कभी उनको तोड़ती, कभी खुद उनके सामने टूटती हुई नारी।" [2]

'आपका बंटी' उपन्यास में पारिवारिक विसंगति के शिकार पति-पत्नी के एकमात्र पुत्र बंटी को केंद्र में रखकर उसके समूचे मानसिक संसार का मनोवैज्ञानिक और यथार्थवादी चित्रण है। श्रीमती कमल कुमार के अनुसार "मन्नू भंडारी का आपका बंटी आज के अनेक परिवारों में साँस ले रहा है अलग-अलग सन्दर्भों में, अलग-अलग स्थितियों में, अलग तरह से।"[3]

उपन्यास की नायिका शकुन उच्च शिक्षित और कामकाजी नारी है। वह तो प्रिंसिपल है। उसका पति अजय दूसरे शहर में रहता है। अजय शकुन को तलाक देने से पहले ही मीरा नामक दूसरी स्त्री से विवाह कर लेता है। इसलिए दोनों में तलाक अनिवार्य होता है। तलाक लेने के बाद शकुन ने भी अजय की तरह अपनी ज़िंदगी को बदलने का प्रयत्न किया। शकुन भी दूसरा व्याह करती है, तब बंटी का भविष्य अँधेरे में पड़ जाता है। वह डॉ.जोशी को अपने पिता के रूप में न स्वीकार करता है और अजय की दूसरी पत्नी को अपनी माँ के रूप में। इन परिस्थितियों के फलस्वरूप वह हॉस्टल में रहने को मज़बूर हो जाता है। अजय, शकुन और बंटी इन तीनों चरित्रों के बारे में मन्नू जी ने स्वयं कहा है - "मेरी अपनी धारणा है कि मैं ने न शकुन को गलत कहा, न अजय को, बंटी तो गलत हो ही नहीं । गलत और सही अगर कोई हो सकते हैं तो वे हैं अजय, शकुन और बंटी के आपसी संबंध।"[4] वस्तुतः 'आपका बंटी' में तलाकशुदा दम्पतियों के नादान बच्चों की मानसिकता का वर्णन है तो दूसरी ओर शकुन जैसी दोहरी व्यक्तित्ववाली नारियों के संघर्ष का भी चित्रण है।

मन्नू भंडारी की रचनाशीलता का प्राणतत्व भी भारतीय नारी की मुक्ति है। उनका रोष पुरुष के खिलाफ़ नहीं, बल्कि उस व्यवस्था के प्रति है जिसने नारी को परिवार में जकड़कर रखा है तथा निर्णय लेने के अधिकार से वंचित रखा है। मन्नू जी मध्यवर्गीय जीवन के घुटन से नारी को मुक्त करना चाहती हैं। वे नारी में बोल्डनेस देखना चाहती हैं। 'आपका बंटी' के शकुन का चरित्रांकन इस बोल्डनेस की गवाही देता है। भ्रम और सेक्स के दोहरे जटिल शोषण के संस्कारों के जाल से नारी के मौलिक व्यक्तित्व को खोज निकालने के लिए जिस साहस और निर्भीकता की आवश्यकता है वे मन्नू जी के सबसे सशक्त हथियार हैं।

'आपका बंटी' की शकुन की मानसिकता आधुनिक नारी की मानसिकता है। आधुनिक नारी का पहला शाप दोहरे स्तर पर जीने की बाध्यता है। दूसरा अभिशाप है अपने व्यक्तित्व के प्रति, आत्मसम्मान के प्रति जागरूकता। शकुन जैसी शिक्षिता नारी अपने को स्वाहा करना नहीं चाहती है। वह परिवेश से लड़कर आगे बढ़ना चाहती है और पुरुष के सामान समाज का उपयोगी अंग बनना चाहती है। शकुन चाहे तो अपने पहले विवाह को निभा सकती थी। लेकिन वह समझौते के लिए कभी तैयार नहीं थी। उसके अनुसार "समझौते का प्रयत्न भी दोनों में एक अंडरस्टैंडिंग पैदा करने की इच्छा से नहीं होता था, वरन् एक दूसरे को पराजित करके अपने अनुकूल बना लेने की आकांक्षा से।"[5] उसकी दृष्टि में पति के अतिरिक्त भी संसार में ऐसा बहुत कुछ होता है जो नारी जीवन को पूर्ण बना सकता है। अजय से अलग होकर शकुन सोचती है - "अजय को उसे दिखा ही देना है कि वह अगर एक नई ज़िंदगी की शुरुआत कर सकती है तो वह भी कर सकती है।"[6]

आज की शिक्षिता नारी अपने अस्तित्व के प्रति कुछ अधिक जागरूक है। अतृप्त वासना और अस्तित्व की अलग पहचान ने आज संबंधों में तनाव और अलगाव भर दिये हैं। शकुन अजय के सामने अपने व्यक्तित्व को खोना नहीं चाहती, क्योंकि ऐसा करने से उसका अस्तित्व

भी मिट जाएगा। वह कहती है- "बंटी केवल उसका बटा ही नहीं है, वह हियार भी है, जिससे वह अजय को टारचर कर सकती है, करेगी ।यहाँ उसका अहंग्रस्त व्यक्तित्व मिलता है।"[7]

'आपका बंटी' का वकील चाचा भी रूढ़ि का विरोध करनेवाला है। वह अजय और शकुन के बीच संदेशवाहक का काम करता है। जब उनका सबंध पूर्ण रूप से टूट जाता है और शकुन बिलकुल असहाय होती तो चाचा उसे दूसरी शादी करने का उपदेश देता है। वह तो एक बच्चावाली औरत है, फिर भी चाचा उसे परंपरा को तोड़ने की सलाह देता है- "चीज़ों को सही तरीकों से लेना सीखो शकुन। जब आदमी एक जगह धोखा खाता है तो उसे लगता है सब जगह धोखा ही धोखा है। पर ऐसा होता नहीं है ।"[8] फिर वह कहता है-"तुम केवल बंटी की माँ ही न हो, इसलिए तुम केवल बंटी की माँ की तरह मत जियो, शकुन की तरह भी जियो।"[9] चाचा की सभी बातें शकुन को प्रेरणा देनेवाली और परंपरा को तोड़ने की शक्ति वहन करनेवाली भी थी। डॉ.राजारानी शर्मा के अनुसार "मन्नू जी की नारी पात्र भारतीय परिवेश की उपज होने पर भी उसमें रूढ़िबद्ध नारी की दयनीयता नहीं मिलती। निडर, शिक्षिता और अन्याय के खिलाफ़ लड़ती नारी को प्रस्तुत करके समाज के लिए नमूना दिखाती हैं।"[10]

जब शकुन डॉ. जोशी के जीवन में प्रवेश करती है, तब बंटी के प्रति उसके प्रेम का भाव बदल जाता है। वह उसे बात-बात पर डाँटती है, पीटती है। अपनी ही संतान शकुन की नयी ज़िंदगी में बाधा बन गयी है। नये वैवाहिक जीवन में बंटी की हरकतें रसभंग की तरह शकुन को प्रतीत होती हैं। वह अपने अहं के लिए बंटी को भी अपने से अलग कर लेती है। शकुन के प्रेम-संबंधों में भी नारी-स्वतंत्रता की भावना जुड़ी हुई है। वह डॉ. जोशी से पूछती है- " क्या प्रेम सचमनी एक शारीरिक आवश्यकता और एक सुविधाजनक एडजस्टमेंट का ही दूसरा नाम है।"[11]

इस प्रकार शकुन भारतीय परंपरा और रूढ़ि से अलग होकर चलनेवाली आधुनिक नारी की प्रतीक है। यहाँ मन्नू जी ने शकुन के माध्यम से यह समझाने का प्रयास किया है कि नारी पहले मानो शरीर थी, अब तो वह अर्थ भी है। शकुन चक्की पीस-पीसकर बेटे का जीवन बनाने में अपने आपको स्वाहा कर देनेवाली माँ नहीं थी, बल्कि स्वतंत्र व्यक्तित्व, आकांक्षाएँ और आजीविका के साधनों से तृप्त माँ थी। इस नारी और माँ से आपसी द्वंद्व का अध्ययन ही शकुन को उसका वर्तमान रूप देता है। वस्तुतः 'आपका बंटी' पति-पत्नी के बीच आपसी अहं के टकराव के दुष्परिणाम तलाक, पुनर्विवाह तथा एक संवेदनशील बालक की संत्रास की कहानी है।

सन्दर्भ :-

1. स्मिता तिवारी, मन्नू भण्डारी के कथा साहित्य में सामाजिक चेतना, शब्द सृष्टि प्रकाशन, दिल्ली, 2015, पृ.16
2. वही, पृ.17
3. आजकल, जून 1989, पृ.8
4. मन्नू भण्डारी, आपका बंटी, वक्तव्य, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2017, पृ.7
5.वही, पृ.35
6. वही, पृ.45
7.वही, पृ.44
8. वही, पृ.40
9. वही, पृ.41
10.डॉ. राजारानी शर्मा, हिन्दी उपन्यास में रूढ़ि मुक्त नारी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2013, पृ.322
11 मन्नू भण्डारी, आपका बंटी, वक्तव्य, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2017, पृ.105

♦सहायक आचार्य, हिन्दी विभाग
महाराजास कॉलेज,
एरणाकुलम
केरल राज्य।

इंदिरा गोस्वामी के उपन्यासों में मानवतावाद

♦ मिनहाज अली

सार : भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित इंदिरा गोस्वामी असम की द्वितीय साहित्यकार और एकमात्र असमिया लेखिका हैं। वे एक मानवतावादी लेखिका हैं। उन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से मानवता की वास्तविक छवि को उकेरा है। वे मानवता को साहित्य की आत्मा मानती थीं और उनकी सभी कथाएँ इसका आवरण है। उनका जीवन मानवीय गुणों से परिपूरित था। उनके व्यक्तित्व में जो मानवतावादी चेतना की भावना है, वही उनकी रचनाओं में दिखाई देती है। समाज के कर्कश और निष्ठुर वातावरण के बीच में भी उन्होंने मानवता की खोज की है। उन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से समाज में मानवीय मूल्यों और मानवतावाद की प्रतिष्ठा करने का प्रयास किया है। उनके अनुसार उत्तम साहित्य वही है जो मानव के हृदय को स्पर्श करता है और मानव के हृदय में मानवीय गुणों को उजागर करता है।

बीज शब्द : असमिया, मानवतावाद, मानवीय मूल्य।

मानवीय मूल्यों की रक्षा हेतु मनुष्यों को केन्द्र में रखकर साहित्य में मानवतावाद की स्थापना की गयी है। हिंदी साहित्य में प्रगतिवादी लेखकों की रचनाओं में मानवतावाद का दर्शन होता है। असमिया साहित्य में मानवतावादी लेखकों की बात की जाए तो इंदिरा गोस्वामी का नाम सामने आ जाता है। उन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से मानवमूल्यों की स्थापना और मानवतावाद की अभिव्यक्ति करने का प्रयास किया है। उनका सारा जीवन और साहित्य मानवीय गुणों से परिपूरित है। उनका मन अत्यन्त कोमल और पवित्र है। इसलिए वे दूसरों की पीड़ा को सहन नहीं कर पाती थीं। जिसके कारण उनके मन में शोषितों और दलितों के प्रति प्रेम, संवेदनशील, सहानुभूति तथा मानवीयता की भावना जाग उठती थी, वही भावना उनके साहित्य में दिखाई देती है। उनके साहित्य में मानवता की सरल अभिव्यक्ति देखने को मिलती है। उन्होंने समाज में मनुष्यों के दुख, यातना, शोषण, पीड़ा, प्रताड़ना, छलना आदि से अभिशप्त जीवन को देखा, वहीं उनकी कलम चल पड़ी। इसलिए भारतीय साहित्य के श्रेष्ठतम साहित्य में उनके साहित्य का स्थान है।

इंदिरा गोस्वामी के प्रत्येक उपन्यास के कथानक और चरित्र मानवतावादी आदर्श से परिपूरित हैं। उनके व्यक्तित्व में जो मानवतावादी चेतना की भावना है, वही उनकी रचनाओं में दिखाई देती है। उनके अनुसार मनुष्य ही मनुष्य को अंधकार से रोशनी में ला सकते हैं। मनुष्य ही मनुष्य को नयी ज़िन्दगी दे सकता है। पृथ्वी में यह सिर्फ प्रेम, सहानुभूति और मानवता से ही हो सकती है। मनुष्यों के जीवन में द्वन्द्व और विरोध की भावना का होना स्वाभाविक है। यही भावना बाह्य और आभ्यंतरिक रूप में दिखाई देती है, जिसके कारण मानव जीवन के विविध रूप हमारे सामने आ जाते हैं। इन भावनाओं में से कुछ मानवता के पक्ष में होते हैं तो कुछ मानवता के विपरीत। इंदिरा गोस्वामी के उपन्यासों में मानवता के दोनों पक्ष दिखाई देते हैं।

'नीलकंठी ब्रज' उपन्यास (1976) में लेखिका ने नायिका सौदामिनी के चरित्र का मानवीय गुणों से परिपूर्ण मात्र के रूप में चित्रण किया है। श्रीकृष्ण की लीला भूमि वृंदावन में सौदामिनी त्रासपूर्ण वैधव्य जीवन जी रही थी। वृंदावन में सौदामिनी मानसिक रूप से परेशान थी। लेकिन फिर भी वह मानवीयता को भूली नहीं। वृंदावन के अमानवीय परिवेश, अन्याय-अत्याचार को देखकर उसके मन में विद्रोह की भावना जाग उठती

है। यह विद्रोह केवल अपने लिए नहीं था, बल्कि वृंदावन में रहनेवाली पीड़ित कृष्णभक्त राधेश्यामी विधवाओं के लिए भी था। वृंदावन के अमानवीय परिवेश में भी सौदामिनी मानव सेवा जैसे मानवतावादी कार्य करने से रुकी नहीं। वह अपने पिता के अस्पताल में नर्स की ज़िम्मेदारी संभाल रही थी। बीमासें के घाव धोने का काम भी करती थी। यह काम सौदामिनी निस्संकोच करती थी। बालाजी के मंदिर की सिढ़ियों पर मृत्यु के क्षण गिननेवाले मरीज़ को पिता जी के साथ जाकर उठा लाई और उसका उपचार भी किया।

मृणालिनी मानवीय गुणों से सशक्त एक नारी पात्र है। उसने पूरी जिन्दगी अंधे पिता और मानसिक रूप से विकारग्रस्त माता की सेवा सुश्रूषा में काट दी। उनके पिता जो कुछ भी कमाते थे, सारा पैसा भोगविलास और शराब पीने में खर्च कर देते थे। जीवन के अन्तिम दिनों में केवल मृणालिनी ही उनका सहारा बनी। मृणालिनी ने अपने माता-पिता के कारण शादी तक नहीं की थी। आखिरी में अर्थभाव के कारण मृणालिनी को पैतृक संपत्ति तक बेचनी पड़ी। अवशेष में मृणालिनी अपने असहाय माता-पिता को लेकर एक झोंपड़ी में रहने लगी। उसने माता-पिता की सेवासुश्रूषा कोई कमी नहीं आने दी। मृणालिनी दूसरों के दुख से भी दुखी हो जाती थी। असहाय की सहायता करना उनके जीवन का एकमात्र उद्देश्य था। श्रीकृष्ण की लीला भूमि वृंदावन जैसी पवित्र नगरी में असहाय जीवन व्यतीत करनेवाली शशिप्रभा की भेंट मृणालिनी से हो गयी थी। असहाय शशिप्रभा ने आलमग़ढी के शव का दाहसंस्कार करने के बाद उसने डर से अंधेरी रात में काँपती हुई मृणालिनी के घर का दरवाज़ा खटखटाया। मृणालिनी दरवाज़ा खोलते ही शशिप्रभा को देखकर आश्चर्यचकित हो उठी। उसे घर के अंदर ले आयी आश्रय दिया। मृणालिनी अर्थाभाव और वस्त्राभाव में जीवन व्यतीत कर रही थी। फिर भी शशिप्रभा को एक चादर देकर कपड़े बदलने के लिए कहती है। इस प्रकार लेखिका ने मृणालिनी के चरित्र के मानवतावादी पक्षों का चित्रण किया है।

अहिरन (1980) उपन्यास में लेखिका ने श्रमिकों के दुखपूर्ण जीवन का चित्रण करने के साथ-साथ हर्सुल की मानवता का परिचय दिया है। हर्सुल एक गहन, गंभीर व नेक व्यक्ति था। ज़्यादा बातचीत करने के बजाय अधिक गंभीर रहता था। कंपनी के इलेक्टिशियन, फिटर, वायरमेन, केन ड्राइवर धोबी आदि के साथ घुल मिल और मैत्रीपूर्ण भाव से रहते थे। कंपनी के गेस्ट हाउस में औरतों को नौकरानी रखने का कोई नियम नहीं था। परन्तु हर्सुल ने कंपनी के नियमों का उल्लंघन कर मानवता के नाते नन्हीबाई, मनसा और कदमबाई को गेस्ट हाउस में काम करने के लिए रखा था। क्योंकि कदमबाई पेट से थी, मज़दूरी तथा तगारी ढोने की हालत में नहीं थी। हर्सुल की मानवता का बाखान करते हुए अजीज मियाँ नन्हीबाई और कदमबाई दोनों बहनों से कहता है "मैनेजर साहब अच्छे आदमी हैं, इसलिए उन्होंने तुम दोनों बहिनों को गेस्ट हाउस में नौकरानी का काम दिया है, नहीं तो वैसे गेस्ट हाउस में औरतों को रखने का कोई कायदा नहीं है।"[1]

हर्सुल के मन में ऊँच-नीच का भेदभाव और छूआछुत की भावना नहीं थी। इसलिए धोबीअजीज मियाँ हर्सुल का अच्छा दोस्त बन गया था। हर्सुल अपने सुखदुख की बात अजीज मियाँ से करता था। अजीज मियाँ की मृत्यु के बाद मकबरा उसकी माँ की कब्र पर मकबरा बनाता है। मकबरा में हज़रत मुहम्मद और जरथुस्त्र की वाणी भी लिखवाता है। हर्सुल की पत्नी निर्मला का महेश ठाकुर के साथ अवैध संबंध था। निर्मला का पूरी रात महेश ठाकुर के साथ रहने के बावजूद भी हर्सुल ने उसे अपना लिया था। वर्क साइट में मज़दूरों के बीच में हड़कंप मच गया। मज़दूर आग बबूला हो कर कहने लगे कि मारो, पत्थर मार कर इन चरित्रहीनों को खत्म कर दो। परन्तु हर्सुल भीड़ के बीच में से जीप की ओर आगे बढ़ गया- "एक मुहूर्त्त गुजर

गया। हर्सुल आगे बढ़ा। लोगों ने उसको रास्ता दिया। वह जीप के पास जाकर ख़ड़ा हुआ। पीछे की सीट पर सिकुड़कर निर्मला पड़ी थी। हर्सुल ने हाथ आगे बढ़ाये। बाई की विवर्ण अर्धचेतन देह को हर्सुल ने गोद में उठाया और भीड़ के बीच से वह आगे बढ़ गया।"[2]

'दक्षिणी कामरूप की गाथा' उपन्यास के मुख्य पात्रों में इन्द्रनाथ एक प्रमुख पात्र है। उपन्यास में उसका चरित्र मानवीय गुणों से परिपूरित चरित्र के रूप में चित्रण हुआ है। इन्द्रनाथ दामोदरिया गोसाईं ब्राह्मण है, फिर भी उसके मन में किसी प्रकार की छुआछूत की भावना नहीं थी। वह हर जाति और धर्म के लोगों के साथ मिलजुल कर रहते थे, उन लोगों के साथ उठना-बैठना यहाँ तक कि उनके साथ खाना भी खाते थे। ब्राह्मण कुल में जन्म लेने के बावजूद उसके मन में कभी भी ऊँच-नीच और छुआछूत का खयाल नहीं आया। इसलिए उसकी माँ उसे कहती थी "बोलो का वह भ्रष्ट जुए का अड्डा तुम्हारे दिल और दिमाग को चट कर गया है। तुम्हें तो अपनी जाति का भी लिहाज नहीं है। तुम उन्हीं के साथ बैठकर चाय पीते हो। तुम्हें पता है कि वहाँ हर तरह के नीच लोग आते हैं।"[3] परन्तु इन बातों से इन्द्रनाथ पर कोई असर नहीं पड़ता था। वह हमेशा अपने मित्रों से मिलने के लिए जाता था।

इन्द्रनाथ को जीवजंतुओं के प्रति अत्यन्त प्रेम था। उसके घर में वंश-परंपरा के अनुसार हाथी पालते थे, जिसका नाम जगन्ननाथ था। किसी कारणवश जगन्ननाथ उन्मत्त हो गया था। उन्मत्त हाथी को पकड़ने लिए फंदेवाज जमालुद्दिन को बुलाया गया था। परन्तु जगन्ननाथ फंदेवाज जमालुद्दिन को बेरहमी से मार देता है। उसकी लाश माटियापहाड़ पर मचान के नीचे जामुन के पेड़ की शाखाओं में लटकी थी। इंन्द्रनाथ जमालुद्दीन की क्षत-विक्षत लाश को देखकर भावुक हो गया था। वह बार-बार रूमाल से अपना चेहरा पोंछ रहा था। फिर भी बड़ी मुश्किल से अपने को प्रकृतिस्थ किया और कहने लगे- "यह लाश इस तरह यहाँ नहीं पड़ी रहनी चाहिए। चलो, तैयार हो जाओ। इसे उठाओ और बातघर ले चलो। हेरामदो के एक ब्राह्मण युवक के मुँह से निकला, 'हम मुसलमान को नहीं छुएँगे। अच्छा हो भोलागाँव से कुछ मुसलमानों को बुलवा लो।'.....उस ब्राह्मण युवक ने इन्द्रनाथ को आगाह किया, छोटे गोसाईं। उस लाश से अपने को सात हाथ की दूरी पर रखना, वरना तुम्हें चन्द्रायण प्रायश्चित्त करना होगा। इस बात का खयाल रहे। इस पर एक और ब्राह्मण ने सुझाया, उस अफीमची कल्टू के बेटे यहाँ मौजूद है। अगर वे इस लाश को ले चलें तो उन्हें केवल धानु प्रायश्चित्त ही करना होगा। इन्द्रनाथ गुस्से के मारे फूट पड़ा, चुप रहो। अगर कोई भी आगे नहीं आया तो मैं खुद इस लाश को ले चलूँगा। हम इसे तमाम रात यहीं पड़े रहने देना नहीं चाहेंगे।"[4] उसके बाद जगन्नाथ को मारने के लिए सरकार की ओर से आदेश दिया गया था कि उसे गोली से मार दिया जाए। परन्तु इन्द्रनाथ ने बहुत ही मुश्किल से सरकार के आदेश पत्र पर दस्तखत किया था। क्योंकि इन्द्रनाथ का सारा बचपन जगन्ननाथ के साथ गुजरा था। उसकी पीठ पर बैठकर खेलता था। इसलिए जगन्नाथ को मारना नहीं चाहता था।

इन्द्रनाथ की बहन गिरिबाला का संबंध फिरंगी मार्क के साथ था। परन्तु गिरिबाला का यह प्रेम संबंध दामोदरिया गोसाइ समाज के खिलाफ था। इसका एकमात्र कारण है कि मार्क एक फिरंगी नीच जाति का था। इसलिए उन दोनों के प्रेम को समाज समेत गिरिबाला के माता-पिता भी मानने को तैयार नहीं थे। परन्तु इन्द्रनाथ को उन दोनों के प्रेम संबंध से कोई आपत्ति नहीं थी। उनकी दृष्टि में मार्क एक सच्चा और ईमानदार व्यक्ति था। वह मार्क की बहुत इज़्ज़त करते थे। गिरिबाला की मृत्यु के बाद इन्द्रनाथ के मित्र देवदत्त मार्क के बारे में भला-बुरा शब्द कहने लगा। परन्तु इन्द्रनाथ से रहा नहीं गया और वह मित्र देवदत्त से कहने लगा "नहीं, नहीं, ऐसा मत कहो। कृपा करो....जहाँ तक मेरा ताल्लुक है, मुझे बुरा नहीं लगता अगर गिरिबाला और मार्क किसी

बंधन में बँध जाते। शायद तुम विश्वास नहीं करोगे, मार्क जैसा सच्चा आदमी मैंने आज तक नहीं देखा। मैं उसकी बहुत इज़्ज़त करता हूँ।"[5] इन्द्रनाथ ब्राह्मणवादी समाज के खिलाफ था, समाज में विधवा पुनर्विवाह और नारी शिक्षा के वे पक्षधर थे।

'अइतिहास' उपन्यास में मानवीय मूल्यबोध का एक सुन्दर निदर्शन देखने को मिलता है। लेखिका गोस्वामी जी ने राजधानी दिल्ली की कर्कश परिस्थितियों और नृशंस हत्याकांड जैसी घटनाओं के बीच में भी संवेदनशील हृदय से मानवता की खोज की है। सन 1984 में सिख देहरक्षी के द्वारा परिकल्पित रूप में प्रधामंत्री इंदिरा गाँधी की हत्या कर दी जाती है। परिणामस्वरूप राजधानी दिल्ली में सिखों का निधन शुरू हो गया था। दिल्ली के अलीगली के चारों ओर लाश ही लाश दिखाई देती थी। मुर्दाघर में लाश रखने की जगह नहीं थी। लाशों को दरख्त के नीचे पत्थर पर लिटाकर पोस्टमार्टम किये जा रहे थे। राजधानी दिल्ली के चारों ओर खून से लथपथ थी। डॉक्टर स्वचालित मशीन की तरह लाशों की चीरफाड़ कर रहे थे। खून और लाश को देखर दरख्त पर बौ कौवे भी कर्कश आवाज में काँवकाँव कर रहे थे। दिन दहाड़े लोगों के गले में टायर बाँधकर उन्हें जिन्दा जलाया जा रहा था। खान मार्केट, रोशनारा रोड और जहाँगीरपुरी में अनेक लाशों लावारिस पड़ी थीं। यमुना नदी का तट कसाईघर बन गया था। इस प्रकार मानवता को हेय सिद्ध कर देनेवाला कोलाहलपूर्ण परिवेश में भी लेखिका में मानवीय मूल्यबोध की खोज और मानवता की प्रतिष्ठा करने की जो आकुलता हैं, वह इस उपन्यास में देखने को मिलती है।

उपन्यास की नायिका दिल्ली विश्वविद्यालय की अध्यापिका है। वे विश्वविद्यालय की प्रोफेसर कॉलोनी में रहती थी। विश्वविद्यालय में आते-जाते विलियम नामक एक शराबी से रोज़ रास्ते में भेंट हो जाती थी। विलियम भी अध्यापिका के साथ सम्मानपूर्वक व्यवहार करता था। इस तरह दोनों एक दूसरे को जानने लगे। एक दिन की बाात है विलियम प्रोफेसर कॉलोनी के आवास गृह की सीढ़ियों के नीचे अध्यापिका से मिला और वह उनसे कुछ कहना चाहता था। परन्तु अध्यापिका ने विलियम के सामान्य शिष्टाचार को जानते हुए भी शराब पीने के कारण उसे अपने घर के अंदर आने के लिए नहीं बोली। इस दौरान आचानक विलियम की मृत्यु हो जाती है। विलियम की मृत्यु के बाद अध्यापिका अपने आपको धिक्कारने लगी और पश्चाताप करते हुए कहने लगी- " हाँ, उस दिन वह वास्तव में मुझे कुछ कहना चाहता था। मैं अपने साथी इन्सानों के साथ अपना कर्तव्य पूरा नहीं कर पायी थी। यह बात कई दिन तक मुझे कोचती रही थी। मैं खुद को दोषी भी मानने लगी थी। उसके बिना कई दिन तक पान और शराब की दुकान मरामरी लगती रही थी। अगर मैं उस दिन उससे बात कर लेती, शायद उसके पीने की आदत छुड़वाने में कुछ मददगार साबित होती। पर.....अगर सहानुभूतिपूर्वक सुनती तो। जानती हूँ यह एक अजब कल्पना थी। पर पता नहीं कैसे मेरे भाई का चेहरा उसके साथ जाकर मिल जाता है और फिर कहीं धुंधलके में खो जाता। किसी के द्वारा समझ लिये जाने और ज़रा सी सहानुभूति के कुछ अनजाने भाव ही शायद इन्सान को ज़िन्दा रखते हैं। जितना इन्सान अपने संगी-साथियों से दूर होता चलता है उतना संबंधों का धागा कमज़ोर हो जाता है, कभी-कभी तो खून से भी सन जाता है।"[6]

अध्यापिका संतोख सिंह के ऑटो से विश्वविद्यालय में आती-जाती थी। सिर्फ विश्वविद्यालय ही नहीं बल्कि राजधानी दिल्ली की अलीगली और ऐतिहासिक जगहों का भ्रमण करती थी। उनके लिए संतोख सिंह एक परमानेंट ऑटोवाला बन गया था। संतोख सिंह भी दूसरे ऑटोवाले को अध्यापिका के पास तक आने नहीं देता था। इस प्रकार अध्यापिका और संतोख सिंह के बीच में एक आंतरिक संबंध स्थापित हो गया था। एक बार संतोख सिंह ने बारिश और तूफान से भरी अंधेरी रात में मदद माँगने के लिए अध्यापिका के

घर का दरवाज़ा खटखटाया। अध्यापिका दरवाज़ा खोलते ही संतोख सिंह को देखकर अचंभित हो गयी थी। संतोख सिंह हाँफ रहे थे। वह अध्यापिका से बात किये बिना सीधे घर के अंदर चला गया और एक कुर्सी के सहारे ख़डा होकर अध्यापिका से पाँच सौ रुपये माँगने लगा। संतोख सिंह के शरीर से शराब की गंध आ रही थी। उसके शरीर के शराब की गंध पूरे कमरे में फैल गयी। अध्यापिका का गुस्सा बढ़ता जा रहा था। उन्होंने संतोख सिंह को डॉट-फटकार के घर के बाहर निकाल दिया। संतोख सिंह को घर से बाहर निकालने के बाद अध्यापिका का संवेदनशील हृदय अपने आपको धिक्कारने लगा। वे कहने लगी "मैं अपनी बॉल्कनी में गयी और नीचे झांका। बारिश के चिह्न नज़र आ रहे थे। .....मैं जाते हुए संतोख सिंह की आखिरी परछाई भी नहीं देख पाई थी। मन में पछता भी रही थी और सोच रही थी कि वह पिये हुए जरूर था, पर शायद उसे मदद की सख्त ज़रूरत थी।"7

अध्यापिका ने केवल अनुभव के माध्यम से मानवता का जयगान नहीं किया है, बल्कि राजधानी दिल्ली की जी. बी. रोड में रहनेवाली वेश्याओं के जीवन के बारे में जानने का अग्रह व्यक्त किया है। वे बिना संकोच के वेश्यालय में जाती है और वहाँ पर रहनेवाली वेश्याओं के कष्टपूर्ण जीवन को सहृदयता के साथ अनुभव भी करती हैं। ग्राहकों की भीड़ के कारण कम उम्रवाली माँ अपने बच्चे को स्तनपान तक नहीं कर पाती थी। ग्राहकों की भीड़ और मालिक के आदेशों को मनाह करने का साहस उसमें नहीं था। उसे अपने बच्चे को दूसरे के पास छोड़कर ग्राहक के साथ जाना पड़ा। इस दृश्य को देखकर अध्यापिका का मन आवेग और करुणा से भर गया था। अध्यापिका उस बच्चे के भविष्य के बारे में सवाल पूछने पर पास में बैठी एक वेश्या उत्तर देते हुए कहती है "गाँव भेज दिया जायेगा। हम वैसे भी अपने गाँव पैसा भेजते हैं, ऐसे ही बच्चे भी भेज देते हैं।"8 कोठा नं 42 का वातावरण पहलेवाले कोठे से थोड़ा भिन्न था। यहाँ पर अध्यापिका को एक अलग नज़ारा देखने के मिला था। अंदर के कमरे में से एक लड़की भागती हुई बाहर निकल आयी। उसकी सलवार से खून टपक रहा था। उसके पीछे-पीछे उसी कमरे में से एक आदमी नीचे की ओर भाग गया। इस दृश्य को देखकर अध्यापिका का हृदय चीख उठा। बेंच पर बैठे सभी उस लड़की को ही देख रहे थे। अध्यापिका के सामने बैठी एक वेश्या चिल्लाते हुए कहने लगी "वो बूढ़ा बुन्देलखण्ड का हरामी आया होगा या फिर वो अफ्रीकी छोकरा होगा.....जा अपने कपड़े बदल ले। .....सभी जानवर है यहाँ।"[9] पुरुषों के भोगविलास की शिकार बनी वेश्याओं के ये दृश्य मानवता के अधपतन को दर्शाता है।

मनुष्यों का हृदय कितना निर्दय, निष्ठुर और पाशविक है, उसके एक भयानक दृश्य का उल्लेख लेखिका ने इस उपन्यास में किया है। एक दरिंदा कुलदीप कौर नामक एक लड़की की हत्या कर गेहूँ के खेत में फेंक देता है। वह दरिंदा केवल लड़की की हत्या ही नहीं बल्कि उसकी छाती से स्तन को काटकर पीपल के पेड़ में लटका देता है। मानवता को हेय सिद्ध कर देनेवाले इस दृश्य ने अध्यापिका के दिल और दिमाग को चिर कर रख दिया था। इस प्रकार की अमानवीय घटनाएँ केवल उस समय की ही नहीं है, बल्कि 21 वीं सदी में भी देखने को मिलती है। उदाहरण के लिए जम्मूकश्मीर के कुआ की नाबालिका आसिफा और उत्तर प्रदेश के हाथरस की मनीषा वाल्मीकि के साथ की गई दरिंदगी जैसी घटनाएँ मानवीयता को खत्म कर जंगली जानवारों से भी नीचे गिरा देती है।

मानव के साथ-साथ मानवतेर जीवों के प्रति लेखिका इंदिरा गोस्वामी जी का मन संवेदनशील रहा है। उन्होंने 'छिन्नमस्ता' उपन्सास में जटाधारी संन्यासी, रत्नधर, विधबाला, डरथी ब्राउन और कॉटन कॉलेज के छात्र आदि पात्रों के माध्यम से पशु बलि प्रथा के विरोध में अपनी आवाज उठायी है। लेखिका ने अपने पात्रों के

द्वारा बलि प्रथा पर आस्था रखनेवाले भक्तों को फूलों से देवी की पूजा करने के लिए आह्वान किया है।

मानवतेर जीव भी उनके उपन्यासों में पात्र बनकर उभरे हैं। दक्षिणी कामरूप की गाथा उपन्यास का हाथी जगन्नाथ और 'छिन्नमस्ता' उपन्यास का भैंसा अर्थात् मैना आदि इसके अच्छे उदाहरण हैं। लेखिका ने इन जीवों को समझदार प्राणी के रूप में चित्रित किया है। 'छिन्नमस्ता' उपन्यास की नायिका विधिबाला बचपन से जानवरों से प्यार करती थी। विधिबाला अपने भैंसा को मैना नाम से बुलाती थी। भैंसा अर्थात् मैना को अपने हाथों से दाना-पानी खिलाती थी। इसलिए उसकी बलि देना नहीं चाहती थी।

विधिबाला मन ही मन माँ दशभुजा से प्रार्थना करने लगी कि देवी उसे ही मौत दे दे परन्तु भैंसे की बलि रुक जाएँ। अंधेरी रात में विधिबाला भैंसे के पास गयी और उसकी पीठ पर हाथ रख कर उसे प्यार करने लगी। उसकी पीठ पर बारिश का पानी गिरा था, विधिबाला ने अपनी साड़ी के आँचल से उसकी पीठ पोंछ दी। भैंसा भी पहले की तरह विधिबाला को देख रहा था। विधिबाला रत्नधर से हाथ जोड़कर कहने लगी- "सुनो, लोग कहते हैं कि तुम बलि के लिए लाये हुए पशुओं को चोरी से खोल देते हो और चुपचाप कहीं छोड़ आते हो? मेरे नाम से लाये इस भैंसे को भी तुम इसी तरह कहीं छोड़ आओ। मैं उसे बलि देते हुए नहीं देखना चाहती। मैं सारी-सारी रात जगी रहती हूँ, मुझे नींद नहीं आती। वह मेरी आखों के सामने ही बड़ा हुआ है। उसका राख जैसा रंग धीरे-धीरे काले होते हुए मैंने देखा है। मैं उसके लिए दाना-पानी लेकर उसे मैना कहकर पुकारती हूँ तो वह तुरन्त मेरे पास आ पहुँचता है।"[10] विधिबाला रत्नधर से अनुनय-विनय करके भैंसा को बलि के चुंगल से मुक्ति दिलाती है।

निष्कर्ष

लेखिका इंदिरा गोस्वामी ने अपने उपन्यासों के पात्रों के चरित्र-चित्रण के माध्यम से मानवता का परिचय दिया है। केवल मनुष्यों के प्रति ही नहीं बल्कि मानवेतर जीवों के प्रति भी लेखिका का हृदय संवेदना से भरा हुआ था। उपन्यास की नायिका अध्यापिका के हृदय में मनुष्यों के प्रति गंभीर प्रेम और संवेदनशील होने के कारण कई भी जटिल परिस्थितियों को पार करने में सक्षम थी। अध्यापिका ने जितनी बार मनुष्यों की पाशविकता, निर्दयता और निष्ठुरता के बीच में प्रवेश किया, उतनी ही उनके हृदय में मानवता की छवि देखने को मिली। लेखिका इंदिरा गोस्वामी ने अपने मन की भावनाओं को अध्यापिका के माध्यम से चित्रित किया है।

संदर्भ

1. अहिरन, इंदिरा गोस्वामी, अनुवादक, बुद्धदेव चटर्जी, भारतीय ज्ञानपीठ, लोदी रोड, नई दिल्ली, चौथा संस्करण 2015, पृ. सं 10
2. वही, पृ. सं 111
3. दक्षिणी कामरूप की गाथा; इंदिरा गोस्वामी; अनुवादक, श्रवण कुमार; साहित्य अकादमी, नई दिल्ली; प्रथम संस्करण (पेपर बेक) 2018, पृ. सं 14
4. वही, पृ. सं 157
5. वही, पृ. सं 235
6. अइतिहास, इंदिरा गोस्वामी; अनुवादक, संतोष गोयल; हिन्दी बुक सेंटर, नई दिल्ली, संस्करण 2002, पृ. सं 10
7. वही, पृ. सं 15
8. वही, पृ. सं 69
9. वही, पृ. सं 70
10. छिन्नमस्ता, इंदिरा गोस्वामी; अनुवादक, पापोरी गोस्वामी; भारतीय ज्ञानपीठ, लोदी रोड, नई दिल्ली, सातवाँ संस्करण 2013, पृ. सं 110

◆ शोधार्थी, हिन्दी विभाग
पांडिचेरी विश्वविद्यालय, पुदुच्चेरी 605014
minhazali82@gmail.com
मोबाइल नं 7598611303

हिंदी कविता में कश्मीर की बहुरंगी संस्कृति एवं समाज के विविध आयाम

♦ उमर बशीर

सार : कश्मीर तक्षशिला व नालंदा की भाँति प्राचीन काल से ही ज्ञान, भाषा, साहित्य, विद्या, संस्कृति, सभ्यता, दर्शन, अध्यात्म, सौंदर्य आदि की दृष्टि से अत्यंत समृद्ध व आकर्षण का केंद्र रहा है। आज भी कश्मीर अपनी साँझी संस्कृति के लिए संपूर्ण भारत में जाना जाता है। कश्मीर की इसी विशिष्टता का एक महत्वपूर्ण आयाम है,जिसे सामान्यतः कश्मीरियत कहा जाता है। वास्तव में वर्तमान में भी कश्मीरियत ही कश्मीर की सांस्कृतिक धरोहर है। यही कारण है कि इसकी छाप हिंदी साहित्य पर भी भली भाँति पड़ी है, विशेषतः जम्मू-कश्मीर की हिंदी कविता पर। कश्मीरी संस्कृति के संदर्भ में रचित हिंदी कविताओं का विश्लेषण एवं मूल्यांकन करना ही इस लेख का मुख्य प्रतिपाद्य है।

संकेत शब्द: संस्कृति और समाज का अर्थ,परिभाषा,स्वरूप। हिंदी कविता में कश्मीर की संस्कृति का काव्यकरण,विविध पक्ष, निष्कर्ष।

वस्तुतः सांस्कृतिक चिंतन से ओतप्रोत साहित्य-सृजन प्रत्येक काल में देखा जा सकता है। मानव एक सामाजिक प्राणी है , इस कारण यह स्वाभाविक है कि मानव समाज में रहकर ही विभिन्न अंतःक्रियाएँ करता रहता है। मनुष्य अपनी शारीरिक, मानसिक तथा आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्त्ति हेतु अन्य सामाजिक प्राणियों से संबंध स्थापित कर जीवन का विकास करता रहता है । एक व्यक्ति का दूसरे व्यक्ति के साथ परस्पर संबंध बनाना मानव की आदिम स्वाभाविक प्रवृत्ति रही है । अतः एक सहृदय तथा संवेदनशील व्यक्ति मानव समाज में रहकर ही उसका चित्रांकन साहित्य में भी भली भाँति करता रहता है। मानव, समाज और संस्कृति का परस्पर घनिष्ठसंबंध है, जिसकी घनिष्ठता को प्रतिपादित करते हुए हिंदी की नयी कविता के पितामाह-कविवर अज्ञेय जी अपनी प्रतीकात्मक कविता 'नदी के द्वीप' में कहते हैं-

"हम नदी के द्वीप हैं ।
हम नहीं कहते कि हमको छोड़कर स्रोतस्विनी
बह जाए ।
वह हमें आकार देती है ।
हमारे कोण, गलियाँ, अंतरीप,उभार, सैकतकूल
सब गोलाइयाँ उसकी गढ़ी हैं।"1

द्वीप (भूखंड) को व्यक्ति का और नदी को समाज का प्रतीक मानकर कवि इस तथ्य को नूतन दृष्टि से स्थापित करते हैं कि द्वीप भू का ही एक खंड है, इस खंड के अभाव में भू का कोई अस्तित्व नहीं है और व्यक्ति के अभाव में समाज की कोई सत्ता नहीं , अर्थात् ये दोनों अभेद हैं, अभिन्न हैं ।

"समाज (□□□□□□□□) एक से अधिक लोगों के समुदायों से मिलकर बने एक समूह को कहते हैं जिसमें सभी व्यक्ति मानवीय क्रियाकलाप करते हैं ।"[2] कुछ विद्वान समाज को विशेष संबंधों की एक प्रणाली मानते हैं, जिसका अस्तित्व विभिन्न व्यक्ति समूहों के बीच छिपा होता है । अंग्रेज़ी साहित्य के प्रतिष्ठित लेखक एलेन गिंसबर्ग व्यक्तियों के ऐसे समूह को समाज मानते हैं जिनका सरोकार विशेष संबंधों तथा विशेष व्यवहारों द्वारा परस्पर बंधन को प्रस्थापित करना होता है । इसी विचार को कवि अज्ञेय जी ने उपर्युक्त काव्य पंक्तियों में प्रतीकात्मक ढंग से अभिव्यक्त किया है । अमेरिका के समाजशास्त्री एडवर्ड बैयरन रयूटर का मानना है कि समाज एक अमूर्त शब्द है, जो कि एक समूह के सदस्यों में उनके जटिल पारस्परिक संबंध का बोध कराता है। अतः इस प्रकार समाज का सीधा सबंध मनुष्यों के संगठित समूह से है, जिसमें जीवन को गति देनेवाले अनेक क्रियात्मक तत्त्वों का व्यवहारीकरण होता है ।

वस्तुतः समाज का निर्माण मानव द्वारा संपन्न होता है और यही समाज संस्कृति को जन्म देता है।

"मानवीय आदर्शों, मूल्यों, स्थापनाओं एवं मान्यताओं के समूह को संस्कृति कहा जाता है ।"[3]

संस्कृति की अवधारणा को प्रतिपादित करते हुए 'सांस्कृतिक मानव विज्ञान' के संस्थापक एडवर्ड बर्नेट टायलर (सन् 1832-1917 ई.) सन् 1871 में प्रकाशित अपनी पुस्तक **Primitive culture** के प्रथम अध्याय The Science of Culture के आरंभ में लिखते हैं- "Culture, or civilization, taken in its broad, ethnographic sense, is that complex whole which includes knowledge, belief, art, morals, law, custom, and any other capabilities and habits acquired by man as a member of society."[4] अर्थात् संस्कृति अपने नृवंशविज्ञान (मानवजाति विज्ञान) के व्यापक अर्थ में उस समुच्चय का नाम है जिसमें ज्ञान, आस्था, कला , नैतिकता, विधि विधान, रीति-रिवाज़ तथा अन्य ऐसी क्षमताओं और आदतों का समावेश होता है , जिन्हें मनुष्य समाज के सदस्य के रूप में अभिगृहीत करता है।

समाजशास्त्र के प्रख्यात विद्वान डॉ.श्यामचरण दुबे का मत है- "प्रत्येक मानव समुदाय का जीवन यापन का अपना विशिष्ट ढंग होता है । मानवविज्ञान (नृतत्व) की भाषा में इसे ही संस्कृति कहते है ।" एक और विद्वान अपने शोध प्रबंध में संस्कृति का निष्कर्ष प्रस्तुत करते हुए लिखते हैं- "संस्कृति मानव जीवन की वह अवस्था है, जहाँ उसके प्राकृतिक रागद्वेषों का परिमार्जन होता है । संसार में जहाँ-जहाँ भी मानव जीवन है, मानव समाज है ,वहाँ-वहाँ उसकी अपनी संस्कृति है ।"[6] तात्पर्यतः संस्कृति मूलतः एक सामाजिक विधि है जिसका सीधा संबंध मानवसमाज की पारंपरिक गतिविधियों एवं जीवनशैली से है । इसका क्षेत्र बहुत ही विस्तृत व सर्वव्यापी है । यही कारण है कि संस्कृति का काव्यकरण मानव की आदिम प्रवृत्ति रही है।

वस्तुतः कश्मीर की संस्कृति विविध संस्कृतियों का एक संगम सेतु है, जहाँ अनेकता में एकता दिखायी देती है। कश्मीरी संस्कृति के इतिहास की एक लंबी परंपरा रही है। कश्मीर प्राचीन काल से ही अपनी बहुरंगी संस्कृति के लिए विश्व भर में प्रख्यात रहा है। कश्मीर की संस्कृति विश्व की विशिष्टतम संस्कृतियों में से एक है। इसकी इसी विशिष्टता का एक सगुण आयाम है, जिसे सामान्यतः कश्मीरियत कहा जाता है, जो वर्तमान में मानवता का पर्याय मानी जाती है। कश्मीरी संस्कृति सदा विश्व के साहित्यकारों के आकर्षण का केंद्र रही है । हिंदी कविता में नागार्जुन, सत्यवती मल्लिक, मोहन निराश, शशिशेखर तोषखानी, डॉ.रत्नलाल शांत, महाराज कृष्ण संतोषी, चंद्रकांता, डॉ.अग्निशेखर, महाराज कृष्ण भरत, निदा नवाज़ आदि ने विभिन्न विषयों के अतिरिक्त कश्मीर की संस्कृति पर भी काव्यरचना की है । श्रीनगर कश्मीर में जन्मे शशिशेखर तोषखानी (जन्म 1935 ई.) छठे दशक के एक सिद्धहस्त कवि हैं। उनके द्वारा रचित 'थोड़ा-सा आकाश' (1966 ई.) काव्यसंग्रह उनकी उत्कृष्ट एवं सारगर्भित काव्यकला का परिचायक है। 'सूर्योदय एक प्रतीक्षा एक संभावना' उनकी एक छंदबद्ध कविता है जो कल्छरल एकैडमी जम्मू द्वारा प्रकाशित 'हमारा साहित्य' पत्रिका के सन् 1964 ई. के वार्षिक अंक में प्रकाशित हुई है। इस कविता में कवि एक नये कश्मीर की आशा का आह्वान करते दिखायी देते हैं। वे मानते हैं कि एक नया सूर्योदय होगा, सारी बाधाएँ दूर होंगी, नित नये मार्ग खुलेंगे, दुःख व कष्ट का निवारण होगा, प्रश्नों के उत्तर मिलेंगे, पारस्परिक मेल मिलाप बढ़ेगा और घाटी स्वतंत्रता की साँस लेगी। एक बानगी देखें -

'इन झुके हुये कोहराडबे माथों पर
अब एक नया सूर्योदय लहरायेगा ।
संदर्भों से टूटी इन यात्राओं को
अब नया दर्द फिर से पथ दे जायेगा ।"[7]

श्रीनगर कश्मीर में जन्म रतनलाल शांत की 'चिनार के पत्तों का कथन', 'चिनार', 'शरद में शीन पिपिन्य' आदि कविताएँ कश्मीरी सांस्कृति की द्योतक हैं। उनकी अधिकतर कविताएँ कश्मीरी संस्कृति को प्रतिबिंबित करती दिखायी देती हैं। 'चिनार' कविता चिनार के वृक्ष पर आधारित एक सुंदर कविता है । वास्तव में कश्मीर के परिप्रेक्ष्य में यह वृक्ष एक सांस्कृतिक महत्व रखता है । हरियाली में इसके पत्ते जितने आकर्षक होते हैं उसे कहीं अधिक आकर्षक इसके पत्ते सूखने के उपरांत होते हैं। गर्मियों में इसके पत्तों तले राहगीर को जिस आनंद का अनुभव होता है वह अतुल्य है। पत्ते सूखने के पश्चात लाल हो जाते हैं तो घाटी का

रक्ताभाव सौंदर्य और भी बढ़ जाता है। चिनार का चित्रण करते हुए कवि कहते हैं-

"सतरंगी पंखों पर तिरकर।
सूर्यदेव से लुकछिप खिसकी ।
मधुमयी किरणों के ये छत्ते ।
ये चिनार के पत्ते ।"[8]

अननंतनाग (कश्मीर) के मट्टन गाँव में जन्मे महाराज कृष्ण संतोषी की कई रचनाओं में कश्मीर की संस्कृतिक विरासत के विलोपन की आशंका जतायी गयी है। यह एक निर्विवाद तथ्य है कि आज हमारी सांस्कृतिक विरासत आधुनिकतावाद, उपभोक्ता तथा बाज़ारवाद की शक्तियों के तले दबी कराह रही है ; फलस्वरूप पारंपरिक मूल्यों का विघटन और विलोपन निरंतर बढ़ता जा रहा है। कवि संतोषी भी इस तथ्य से आँख मूंदना उचित नहीं समझते हैं, वे अपनी सांस्कृतिक धरोहर के विलुप्त होने के प्रति पर्याप्त चिंतित हैं,जिसके चित्रण में कवि निरंतर उत्तरोतर अग्रसर हैं-

"व्यभिचार ने विचार को मारा
अनास्था ने अंतरात्मा को
इस तरह नष्ट हुई
वाद
विवाद
संवाद की
हमारे पुरखों की परंपरा
कहने को
आज भी बसा है धरती पर विचारनाग
हमारे पुरखों का गणतंत्र
पर अब वहाँ
ना विचार होता है
ना मंथन
ना संभाषण" [9]

(विचारनाग कश्मीर का एक ऐतिहासिक उपनगर है, जहाँ प्राचीन काल से विभिन्न विद्वानों के बीच पृथक पृथक विषयों,समस्याओं आदि पर वाद विवाद व संवाद होता था।)

समकालीन हिंदी कथासाहित्य की सशक्त कथा लेखिका होते हुए भी श्रीमती चंद्रकांता जी ने अपने कथासाहित्य की ही भाँति कविता में भी कश्मीर की संस्कृति के विभिन्न आर्द्र और सान्द्र बिंब उकेरे हैं। इसमें कोई दो राय नहीं कि चंद्रकांता ने कश्मीरी समाज से जुड़े बहुपक्षीय आयामों को काव्य का जामा पहनाया है। उनकी कविताओं में कश्मीर के खान-पान, वेशभूषा, पर्व-त्योहार आदि के अनेक चित्र दृष्टिगत होते हैं। एक उदाहरण द्रष्टव्य है-

"उस पार .....
अगरबात्तियों की महक आती है कभीकभार दूर से
रसोई से उठती है धुएँ की शहतीर
कानुल साग और वोस्तहाख की मिलीजुली गंध ।
और वे इंतज़ार करते हैं
वक़्त के गुज़र जाने का ।"[10]

'कानुल साग' और 'वोस्तहाख ' जैसे कश्मीरी शब्दों के प्रयोग द्वारा कविता में जिज्ञासा को पुष्ट किया गया है । कवयित्री ने इसी भाँति अपनी अनेक कविताओं में कश्मीरी भाषा के शब्दों का निःसंकोच प्रयोग किया है । उनकी कविताएँ पाठक को हिंदीलिपि में कश्मीरी भाषा की मधुरता का सुखद अनुभव करा देती है । यह मिास उनकी कविताओं में निरंतर बनी रहती है ।

जम्मू-कश्मीर की समकालीन हिंदी कविता के प्रतिनिधि कवि डॉ.अग्निशेखर (जन्म 1956 ई.बांडीपोरा कश्मीर) की कविताओं का मुख्य स्वर विस्थापन रहा है ,परंतु कवि ने कश्मीरी संस्कृति से संबंधित बहुपक्षीय धरातलों को भी कविता में चित्रित करने का भरसक प्रयास किया है । इस संबंध में उनकी 'काँग़डी', 'कोयला', कश्मीरी मुसलमान-1, कश्मीरी मुसलमान- 2 आदि कविताएँ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं । आलोच्य कविताएँ एक सहृदय के मनमस्तिष्क पर मधुर आघात करती हैं । 'काँग़डी' कविता को पढ़ने के उपरांत मन आह्लादित होता है । एक उपेक्षित पत्नी के साथ काँगरी की उपमा देते हुए कवि कहते हैं-

"जाड़ा आते ही वह उपेक्षित पत्नी सी
याद आती है
अरसे के बाद हम घर के कबाड़ से
उसे मुस्कान के साथ निकाल लाते हैं
काँग़डी उस समय
अपना शापमोचन हुआ समझती है

उसके तीलियों से बुनी
देह की झुर्रियों में
समय की पड़ी धूल
हम फूँककर उड़ाते हैं"[11]

अननंतनाग (कश्मीर) जनपद के मट्टन गावँ में जन्मे महाराज कृष्ण भरत यद्यपि कश्मीर की विकृत परिस्थितियों के परिणामस्वरूप वर्तमान में विस्थापन झेल रहे हैं, तथापि अपने सांस्कृतिक सरोकारों की काव्यात्मक अभिव्यक्ति कवि बारबार करते रहते हैं । कवि भरत अपनी आहत भावनाओं को अभिव्यक्ति करते समय ऐतिहासिक प्रसंगों का उल्लेख भी भलिभाँति करते रहते हैं । इस दृष्टि से उनकी चिनार का वजूद, समावार आदि कश्मीर की आदिम-परिपाटी को समर्पित कविताएँ हैं । 'चिनार का वजूद' कविता में चिनार वृक्ष के अस्तित्व को सहजता से चित्रित किया गया है । एक उदाहरण द्रष्टव्य है-

"पतझड़ की ठिठुरती रातों में
कागड़ी में बिखरे अंगारों से
मेरे व्यक्तित्व का सहारा
लेते लोग,
बर्फ़ीली चादर की तहों में
समाधिस्थ
मेरा वजूद ।"[12]

वर्तमान में कश्मीर घाटी के एक प्रतिनिधि कवि श्री निदा नवाज़ की कविताओं में कश्मीरी संस्कृति से जुड़े विभिन्न चित्र बिखरे पड़े हैं । कवि अपनी संस्कृति को सर्वोत्कृष्ट मानते हैं । कश्मीर के इतिहास का प्रसंग प्रस्तुत कर सादृश्य विधान द्वारा कवि नवीन सांस्कृतिक संदर्भों को रेखांकित करते दृष्टिगत होते हैं। 'बर्फ़ और आग' कविता में कश्मीरी संस्कृति और सभ्यता को वर्तमान के यंत्रणापूर्ण प्रसंगों के साथ जोड़कर उसके दुष्प्रभावों को बिंबित किया गया है । अपनी गौरवशाली संस्कृति को रंग में भंग करने की स्थिति को कवि सहन नहीं कर पाते।

निदा ने अपनी कई कविताओं में कश्मीरी संस्कृति का सारगर्भित परिचय शेाजरीनन में प्रस्तुत करके उसे वर्तमान समय के संकीर्ण संदर्भों के साथ जोड़कर कविता का आयाम और भी बढ़ाया है । प्रो.ज़ाहिदा जबीन अपने एक शोधालेख- कश्मीर के हिंदी कवि एक अध्ययनमें निदा की कविताओं का विश्लेषण करते हुए कहती हैं- "कंटीली झाड़ियाँ कविता में निदा नवाज़ अपनी संस्कृति और सभ्यता का गुणगान करते हैं। ललेल्श्वरी और नुंद ऋषि जैसे संतों की धरती पर जन्म लेने का गौरव व्यक्त करते हैं और वादी की शाँति की आशा करते हैं।"[14] अपनी विरासित को सुरक्षित रखने और भली भाँति उसकी स्तुति करने में वह कोई समझौता नहीं करते, क्योंकि वह अपने सांस्कृतिक सरोकारों एवं अतीत के गौरव में अधिक आस्था रखते हैं , जिसकी अभिव्यक्ति कवि ने पगपग पर मुक्तकं से की है ।

सारांशतः स्पष्ट है कि हिंदी के अनेक कवियों ने अपनी कविताओं में कश्मीरी संस्कृति से जुड़े विभिन्न पक्षों को रेखांकित किया है । आलोच्य कवियों द्वारा कश्मीर संदर्भ में रचित कविताएँ कश्मीरी संस्कृति का दर्पण है । अतः इस प्रकार जहाँ रतन लाल शाँत की कविताएँ बर्फ़, चिनार आदि के अनुभूतप्रवण बिंब प्रस्तुत करते हैं, वहीं चंद्रकांता अपनी कविताओं में कश्मीरी खानपान,पर्वत्यौहार आदि का बोलबाला करती हैं । इसी प्रकार जहाँ निदा नवाज़ अपनी अतुल्य संस्कृति के गीत गाते फिरते हैं, वहीं महाराज कृष्ण भरत की 'समावार' कविता कश्मीरी नून चाय (नमकीन चाय) और केसरकहवे के गर्मगर्म चुस्कियों की याद दिलाती है । आलोच्य कविताओं में कश्मीरी शब्दावली का भी प्रचुर प्रयोग हुआ है । शीन पिपिन्य,कानुल साग,वोस्तहाख, काँग़डी, समावार आदि जैसे कश्मीरीभाषी शब्दों के प्रयोग ने कविता में रुचि को विदग्ध किया है। अतः यह कहना उचित होगा कि कश्मीरी संस्कृति के संदर्भ में लिखित हिंदी कविताओं का एक विशेष मूल्य है, क्योंकि किसी भी राष्ट्र की संस्कृति उसकी पहचान होती है। इसलिए ये कविताएँ कश्मीर में हिंदी साहित्य की अमूल्य धरोहर हैं।

संदर्भ-

1. अज्ञेय, सच्चिदानंद हीरानंद वातस्यायन अज्ञेय; हरी घास पर क्षण भर; प्रगति प्रकाशन, नयी दिल्ली; 1949 ई.

2. Wikipedia Foundation . समाज । 5 Dec 2020, https://hi.wikipedia.org/ wiki/.

3. Absolute study. समाज और संस्कृति । 15 March 2020, https://www.absolutestudy.com/sanskriti-aur-samaj.
4.Tylor, Edward Burnett. Primitive Culture, Volume-1. John Murray, Albemarle street, London , 1920 c.e (1871 c.e), p. 1.
5.दुबे, श्यामाचरण. मानव और संस्कृति (संस्करण1).राजकमल प्रकाशन, दरियागंज, नयी दिल्ली, 1960 ई., पृ. 14.
6. डॉ. रजनी; चंद्रकांता के कथासाहित्य में कश्मीरी समाज, संस्कृति और इतिहास; अलीग़ढ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीग़ढ, 2008 ई. , पृ.137.
7. तोषखानी, शशिशेखर.थोड़ा सा आकाश. प्रतिमा प्रकाशन, श्रीनगर कश्मीर,1966 ई., पृ. 45.
8. शांत, रतनलाल; चिनार.पद्यांजलि, संपादक-पृथ्वीनाथ पुष्प, जम्मूकश्मीर कल्चरल अकादमी,जम्मू,1961 ई.,पृ. 57.
9. संतोषी, महाराज कृष्ण; आत्मा की निगरानी में . मानस पब्लिकेशन, इलाहाबाद, 2015 ई., पृ. 95.
10. चंद्रकांता; यहीं कही आसपास; नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दरियागंज, नयी दिल्ली; 1999 ई.; पृ. 23.
11. डॉ.अग्निशेखर; किसी भी समय; संभावना प्रकासन हापुड़; उत्तर प्रदेश; 1992 ई.; पृ. 9.
12.भरत महाराज कृष्ण; फिरन में छिपाए तिरंगा; अनिल प्रकाशन, नयी सड़क, दिल्ली; 1995 ई.; पृ. 52.
14.जबान, (प्रो.) 'ज़ाहिदा.कश्मीर के हिंदी कवि एक अध्ययन'; वाङ्मय; अंक- अप्रेल 2013; पृ. 63.

♦ शोधार्थी हिंदी विभाग,
कश्मीर विश्वविद्यालय, श्रीनगर कश्मीर 190006.
संपर्क 8825085547
ईमेल umar.scholar@kashmiruniversity.net

'बिना दीवारों के घर' नाटक में स्त्री जीवन

♦ डॉ.लक्ष्मी.एस.एस

सार : मन्नू भंडारी जी के 'बिना दीवारों के घर' नाटक में कामकाजी नारी की जिंदगी के विभिन्न पहलुओं को स्पष्ट व्यक्त किया गया है। पारिवारिक जीवन को सुखद बनाने में पति-पत्नी का सम्पूर्ण योगदान आवश्यक है। गृहस्थ जीवन में फूट पड़ती तो सम्पूर्ण परिवार को उसका आघात सहना पड़ता है। विघटित परिवार के सदस्य खासकर नारी सदा कुंठा, निराशा,घुटन आदि से ग्रस्त होती है। 'बिना दीवारों के घर' में घर की जो दीवारें हैं. लगभग न हुई सी हैं । इसमें झगड़ा, असमंजस, सारी दुविधा और असुरक्षा एक निराधार संदेह के रूप में फूट पड़ती हैं। यहाँ लेखिका ने वैवाहिक सम्बन्ध में होने वाले विघटन, निराशा,घुटन, स्त्री पुरुष के बीच होने वाले मनमुटाव आदि को व्यक्त किया है।

बीज शब्द : आत्मनिर्भर , कामयाब, जिम्मेदारी ,चारित्रिक दुर्बलता ,मनमुटाव

आजकल परिवर्तन दुनिया में बहुत आ गया है। पुराने दिनों की तरह लड़कियाँ अब अशिक्षित नहीं रही हैं। महिलाएँ पुरुषों के साथ कंधे से कन्धा मिलाकर सर्व जगह चल रही हैं और कामयाब भी हो रही हैं।

ऐसा कोई भी क्षेत्र नहीं है जहाँ महिलाओं ने अपनी काबिलियत को प्रमाणित न किया हो । सुबह से लेकर शाम तक दफ्तरों में बैठकर कार्य करना, फिर अपने परिवार के लिए खाना बनाना, बच्चों और पति की छोटी-बड़ी ज़रूरतों का विशेष ध्यान देना आदि महिलाएँ बखूबी करती हैं। पुरुष जो हैं दफ्तरों से आकर विश्राम करते हैं, लेकिन महिलाएँ तब भी अपने कर्तव्य के प्रति सचेत हैं, आराम करने का समय भी कभी कभी विरले ही मिलता है। आज महिलाएँ आत्मनिर्भर

हैं और वे दफ्तर के साथ परिवार की हर छोटी बड़ी चीज़ों का ध्यान रखती हैं और शायद अपना ध्यान नहीं रख पाती हैं। महिलाएँ जीवन में माँ, बेटी, बहू , भाभी, बीबी आदि अनेक भूमिकाएँ निभाती हैं और सारे कर्तव्यों का पालन भी करती हैं । पुरुषों और महिलाओं की समानतावाला सोच अभी भी समाज में पूरी तरह से जागृत नहीं हुआ है।

कुछ महिलाएँ समाज के सोच की फ़िक्र न करते हुए, समाज और परिवार के लिए एक मिसाल कायम करती हैं।

नाटकों में भी, ऐसे अनेक नारी पात्र हैं जो शिक्षित हैं ,स्वावलंबी हैं और समाज को सोचने के लिए विवश करते हैं। ऐसा एक नाटक है 'बिना दीवारों के घर' जो श्रीमती मन्नू भंडारी द्वारा लिखित है। तीन अंकों में विभाजित बिना दीवारों के घर नाटक में कुल तीन नारी पात्र हैं शोभा ,जीजी और मीना। दो प्रधान पुरुष पात्र हैं अजित और जयंत । इन चरित्रों के माध्यम से लेखिका ने मानवीय सम्बन्धों की ऊष्मा और व्यक्तित्व विधान की पीड़ा को अभिव्यक्ति देने का प्रयास किया है।

शोभा अजित की पत्नी है। उनकी एक छोटी बच्ची भी है अप्पी। शोभा एक अध्यापिका के साथ-साथ एक अच्छी गायिका भी है। जब उसका विवाह अजित से हुआ था तब तो वह ज़्यादा पढ़ी-लिखी नहीं थी। पति अजित ने ही उसे ऊँची शिक्षा दिलायी थी। पहले बी.ए और फिर एम. ए. करने के बाद वह एक महिला कॉलेज में अध्यापिका बनी। पहले सब ठीक ही था। पत्नी को पढ़ा-लिखाकर, नौकरी दिलाकर अजित के अहं को संतोष हुआ था, और शोभा भी अपने पति के प्रति विनीत थी। वह गृहिणी थी तो घर का सम्पूर्ण दायित्व बिना किसी शिकायत के बखूबी निभाती थी। शोभा अजित की ओर संकेत करते हुए कहती है "घर की हर चीज़ को इधर-उधर फेंकते फिरना और फिर दुनिया भर का शोर मचाना, क्यों"[1]

लेकिन धीरे -धीरे सब कुछ बदलता गया। अध्यापन की ज़िम्मेदारी के बढ़ते, अब वह पहले की तरह पति की खातिरदारी नहीं कर पाती है और इसी कारण से पति अजित उससे असन्तुष्ट है। शोभा और अजित के एक मित्र जयंत की सिफारिश में दो ही साल का अनुभव होने के बावजूद शोभा को उसी महिला कॉलेज में प्रिन्सिपल का पद मिल जाता है तो अजित की असंतुष्टि ओर बढ़ जाती है, और पति-पत्नी के बीच दरार बढ़ने लगती है। पति अजित को उसका घूमना-फिरना, पढाना, गाना ये सब बाद में पसन्द नहीं आती है। वह उसके सभी कार्यों में किसी न किसी बहाने रुकाावट डालता है। उसका कहना कि शोभा का नौकरी छोड़ना ही उचित है। वह शोभा को अजित मेड कहकर हमेशा खिझाता रहा। जब अपने मित्र जयंत के साथ शोभा का सम्पर्क बढ़ने लगता है और शोभा को बहुत कम समय में प्रिंसिपल का पद मिल जाता है तो अजित के मन में दोनों के प्रति संशय पैदा हो जाता है। यहीं से पति-पत्नी का सम्बन्ध बिगड़ने लगता है। शोभा जयंत को फ़ोन करती है और बताती है - " है जयंत, है ! मैंने कभी स्वप्न में भी नहीं सोचा था कि ये इस स्तर पर उतर आयेंगे न सारी रात क्या गुज़री है, मुझ पर कि बता नहीं सकती न किस बात की है यह कुंठा? क्या नहीं है अजित के पास?"[2]

अजित को अपनी वर्तमान नौकरी से भी असंतोष है। आखिर वह नौकरी त्याग देता है। वह दूसरी नौकरी की तलाश में भटकने लगता है और इसी वक्त पत्नी शोभा को प्रिंसिपल का पद मिल जाता है, तो उसके मन में ईर्ष्या भी बढ़ती है । पुरुष अहंकार, संशय और ईर्ष्या अजित के व्यक्तित्व को विदोष बना देता है । हम देख सकते हैं कि नाटक की दूसरी स्त्री पात्र जीजी जो अजित की बड़ी बहन है, एक बाल विधवा है। अजित और शोभा दोनों के लिए जीजी, माँ जैसी है। वह माँ की ही तरह दोनों को प्यार करती है और सलाह भी देती है। वह अक्सर दोनों पति-पत्नी के बीच की दूरी को कम करने की कोशिश करती रहती है। वह अपनी ननद शोभा की प्रतिभा एवं व्यक्तित्व के प्रति सम्मान रखती है।

नाटक की तीसरी स्त्री पात्र मीना अजित और शोभा दोनों के मित्र जयंत की पत्नी है। अपने पति जयंत की चारित्रिक दुर्बलता के कारण वह जयंत से विवाह-विच्छेद कर लेती है। फिर भी दोनों अजित और शोभा के घर में आते-जाते रहे। मीना ही अजित को मनाकर शोभा को एक समारोह में गाने के लिए ले चलती है। स्वावलम्बी होकर शोभा का अपना एक स्वतंत्र व्यक्तित्व विकसित हो रहा था,

उसे पति अजित का यह अधिकार भाव अच्छा नहीं लगता। जब अजित शोभा और अपने मित्र जयंत को लेकर संशयग्रस्त हो जाता है तब दोनों का अपना घर बिना दीवारों के घर बनता है।

आखिरकार शोभा के कहने पर जयंत की ही सिफारिश से अजित को पुनः नौकरी मिल जाती है । पर शोभा यह गुप्त रखती है कि जयंत के प्रयत्न से ही अजित को नौकरी मिली है। शोभा के महिला कॉलेज में प्रिंसियल बन जाने की खुशी में घर में एक पार्टी का आयोजन होता है। पार्टी में जब यह घोषित किया जाता है कि अजित को भी नई नौकरी मिली है; तो सब उसे बधाई देने लगते हैं। जयंत पार्टी में आना नहीं चाहता था, लेकिन जीजी के आग्रह से आ गया तो अजित को बुरा लगा। पार्टी में आए मेहमानों के बीच जयंत और शोभा को लेकर कानाफूसी होने लगी तो अजित को और बुरा लगा। पार्टी के बाद पति-पत्नी के बीच घमासान लड़ाई हुई। दोनों को समझाते जीजी थक गई। पति के मुख से दुर्वचन सुनकर शोभा का हृदय विदीर्ण हो गया। वह घर छोड़कर चली गई ।

अपनी बच्ची के बीमार होने की खबर सुनकर शोभा घर लौट आई। जीजी ने भी पति-पत्नी को एक करने का भरसक प्रयास किया। अजित थोडा-सा आश्वस्त था कि इस बार शोभा घर छोड़कर नहीं जाएगी। लेकिन इस सोच के विपरीत शोभा अपना निश्चय बना देती है कि वह अपनी बच्ची अप्पी को भी अपने साथ लेकर चली जाये। अजित इसका सख्त विरोध करता है और उसे भद्दी गालियाँ देता है तो शोभा एकदम अपने भीतर की पत्नी को और माँ को भी मारकर चली जाती है और अकेली होकर जीने का निश्चय करती है।

महिलाओं के बगैर समाज की कल्पना करना बेकार है। महिलाएँ किसी भी क्षेत्र में पुरुषों से कम नहीं हैं। अगर महिलाएँ शिक्षित न होतीं और आत्मनिर्भर न होतीं तो आधा देश अशिक्षित रह जाएगा। कामकाजी महिलाओं को कभी-कभी अपने पुरुष से भी प्रोत्साहन नहीं मिलता है, कभी-कभी पुरुष सहकर्मी भी अपने साथ काम करने वाली महिलाओं को आगे बढ़ने से रोकता है, क्यों कि कुछ पुरुष अपने को महिलाओं से ऊँचे स्तर के मानते हैं।

महिलाओं से परिवार और कर्म क्षेत्र बहुत उम्मीदें रखते हैं। साथ ही साथ महिलाओं की भी उम्मीदें हैं। समाज को उन्हें पूरा करने का दायित्व है। वह इंसान होती है, मशीन नहीं। कभी परिवार के सदस्य भी उन्हें समझने तैयार नहीं होते हैं। आज भी हम पुरुष शासित समाज में रहते हैं। हमारा दायित्व है कि सभी में स्त्री का सहयोग हो, हर फैसला लेने से पूर्व स्त्रियों का सुझाव माँगे और आगे बढ़े। कभी-कभी स्त्रियाँ बहुत अधिक मनमुटाव होने पर भी शान्ति से समझौता करते हुए जीने की कोशिश करती हैं। लेकिन पुरुष, इसे उनकी दुर्बलता न समझें बल्कि बड़प्पन ही मानें।

नाटक में कामकाजी नारी की ज़िदगी के विभिन्न पहलुओं को स्पष्ट व्यक्त किया गया है, पारिवारिक जीवन को सुखद बनाने में पति-पत्नी का सम्पूर्ण योगदान आवश्यक है। अगर परेशानियाँ गृहस्थ जीवन में फूट पड़तीं तो सम्पूर्ण परिवार को उसका आघात सहना पड़ता है। विघटित परिवार के सदस्य, खासकर नारी सदा कुंठा, निराशा ,घुटन आदि से ग्रस्त होती है। 'बिना दीवारों के घर' का जो घर है उसमें दीवारें लगभग न हुई सी हैं । इसमें यह झगड़ा ,असमंजस, सारी दुविधा और असुरक्षा एक निराधार संदेह के रूप में फूट पड़ती हैं। यहाँ लेखिका ने वैवाहिक सम्बन्ध में होनेवाले विघटन, निराशा,घुटन स्त्री पुरुष के बीच होनेवाले मनमुटाव आदि को व्यक्त किया है। असल में मन्नू भंडारी जी की रचना 'बिना दीवारों का घर' में नारी की महत्वाकांक्षाओं को पुरुष कितने मायने रखते हैं , इसके बारे में भी बताया गया है। पहले अजित अपने अधीन रखकर शोभा को आगे पढ़ाना चाहता है, फिर उसे नौकरी छोड़ने को विवश भी कराता है, इसमें अजित का अहं ही दिखाई देता है।

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि 'बिना दीवारों के घर' मन्नू भंडारी की एक सफल रचना है। साथ ही समय के अनुकूल भी है। इसमें लेखिका ने संघर्ष झेलनेवाली कामकाजी औरत को प्रस्तुत किया है जो पाठकों के मन को छू लेने में सक्षम हुई है।

संदर्भ :

1. पृ.12 बिना दीवारों के घर ,मन्नू भंडारी, राधाकृष्ण प्रकाशन ,नयी दिल्ली, 2015
2. पृ. 62, वही

सहायक ग्रंथ एवं साइट

1. बिना दीवारों के घर ,मन्नू भंडारी, राधाकृष्ण प्रकाशन ,नयी दिल्ली ,न 2015
2.इक्कीसवीं सदी के हिंदी महिला कथा साहित्य में स्त्री विमर्श ,डॉ. अंजली चौधरी, श्रीराम प्रकाशन,कानपुर, 2017
3.इक्कीसवीं सदी का कथा साहित्य, डॉ. सुरैय्या शेख, शुभम पब्लिकेशन,कानपुर, 2014
4.हिंदी महिला नाटककार, डॉ. भगवान जाधव ,ए.बी.एस. पब्लिकेशन,वाराणसी, 2013

♦ असिस्टेंट प्रोफेसर
एन एस एस कॉलेज, करमला
तिरुवनंतपुरम, केरल राज्य।

इतना विष घुसा आ रहा है कि देश की भावी पीढ़ी लावारिस सी बनाकर द्वंद्व में जीने और टूटने को छोड़ दी जा रही है। 'आपका बटी' उपन्यास में 'जन्मपत्री बंटी की' नामक भूमिका में मन्नूजी ने लिखा है कि "मुझे लगा कि बंटी किन्हीं दो-एक घरों में नहीं, आज के अनेक परिवारों में साँस ले रहा है अलग-अलग संदर्भों में, अलग-अलग स्थितियों में। लेकिन एक बात मुझे इन बच्चों में समान लगी और वह यह कि ये सभी फ़ालतू, गैर ज़रूरी और अपनी जड़ों से कटे हुए हैं।"[1]

चौथी कक्षा में पढ़नेवाला अरूप बन्ना या बंटी नामक पात्र 'आपका बंटी' उपन्यास का मुख्य पात्र है। उपन्यास में कलकत्ता के पास की बांकुरा जगह का जिक्र है। प्रेम विवाह के पश्चात् बंटी के माता-पिता, शकुन एवं अजय बन्ना जीवन की विरसता से खिन्न होकर जीने लगते हैं। आपसी तनाव एवं मन मुड़ाव के कारण वे अलग होने का निर्णय लेते हैं। अजय से तलाक हो जाने के बाद शकुन डॉ. जोशी को विवाह करता है। विवाह के बाद बंटी और शकुन डॉ. जोशी के घर में रहने लगते हैं। उस घर में डॉ. जोशी के दो बच्चे अमी और जोत के होते हुए भी बंटी, अकेलापन महसूस करता है। बंटी अपने पापा के पास कलकत्ता जाने केलिए हाँ करता है। शकुन समझती है कि बंटी अजय के साथ प्रसन्न है। इसलिए रोकती नहीं। मगर बंटी, शकुन से नाराज़ है कि वह उसे कहीं रोका भी नहीं। बंटी कलकत्ता पहुँच जाता है। वहाँ बंटी का परिचय अजय की विवाहिता पत्नी, अपनी नई माँ मीरा और बच्चे से होता है। वहाँ भी बंटी एकदम अकेला रह जाता है। कलकत्ता स्थित स्कूल में प्रवेशन परीक्षा में उत्तीर्ण न होने पर अजय ने उसे दूसरे स्कूल में प्रवेश दिलाकर हॉस्टल में रखने का निर्णय लिया। न चाहते हुए भी अंत में बंटी को पापा का निर्णय स्वीकारना पड़ा।

बंटी के तनाव एवं घुटन की मानसिक स्थितियों को लेखिका ने सीधे नहीं चित्रित किया है। जब तलाक हो जाता है तो शकुन बंटी को अजय को सताने का माध्यम बनाने की कल्पना पर संतोष पाती है। सभी पात्र एक-दूसरे में ऐसे उलझे हैं कि पारिवारिक त्रासदी से उपजी स्थितियाँ सभी केलिए यातना बन जाती हैं। शकुन और अजय अपने आप में अहं, महत्वाकांक्षाओं और कुंठाओं के संदर्भ में ही सोचते रहे। बंटी के संबंध में नहीं। तलाक होने के बाद बंटी माँ के साथ रहता है और मन ही मन स्वप्न संजोता है कि "पापा फिर से उनके साथ रहने लग जाएँ तो?"[2]

मम्मी के साथ रहकर बंटी मम्मी की खुशी की बात करता है। रैक पर रखी पापा की तस्वीर खिलौनों की अलमारी में बंद करके उसे लगता है, जैसे मम्मी की ओर से पापा के विरुद्ध बहुत बड़ा कदम उठाया है। मम्मी और डॉ. जोशी के साथ कंपनी बाग घूमने की योजना पर बंटी आक्रोश से भर उठता है और मम्मी के प्रति नाराज़ हो जाता है। शकुन सोचती है कि डॉ.जोशी से पुनर्विवाह करने पर बंटी अजय का अभाव भूल जायेगा। लेकिन उसका यह विचार एक भ्रम मात्र रहता है। बंटी का व्यवहार जब

डॉ.जोशी के प्रति असभ्य होने लगता है तो शकुन सोचती है इस अनावश्यक तत्व को अब अजय के पास भेज देना चाहिए ताकि वह भी तो जाने कि बच्चे को लेकर किस तरह यातना से गुज़रना पड़ता है। वह अपने और डॉ. जोशी के बीच दरार बनने देना नहीं चाहती। अजय और मीरा के साथ रहकर बंटी को अपनी मम्मी शकुन याद आती है। लेकिन बंटी का दुर्भाग्य है कि पापा के पास मम्मी नहीं और मम्मी के पास पापा नहीं। अतः उसके लिये एक ही रास्ता है होस्टल।

बाल मनोविज्ञान पर आधारित इस उपन्यास में लेखिका ने प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक फ्रॉयड, एडलर आदि के सिद्धांतों का आश्रय लेकर बंटी के अंतर्द्वंद्व और तज्जन्य कुंठाओं का अत्यंत सजीव और वैज्ञानिक आकलन प्रस्तुत किया है। बंटी की पारिवारिक स्थितियाँ सामान्य नहीं हैं, इसलिए उसके व्यवहार में अनेक असामान्यताएँ आ गई हैं। उसका ईगो अत्यंत प्रबल है। इसलिए उसमें एकाधिकार की भावना सदैव विद्यमान है। मीरा और डॉ. जोशी के प्रति बंटी के मन में ईर्ष्याभाव है, क्योंकि वह इन्हें पापा और मम्मी के अलगाव का मूल कारण मानता है। सुखवाद (सुखवाद अपने ही सुख के बारे में सोचना) के कारण अपनी ही इच्छाओं की पूर्ति चाहता है लेकिन विफलता के कारण विद्रोही बन जाता है।

बच्चे के व्यक्तित्व निर्माण में वंशागत विशेषताएँ और परिवेश का महत्वपूर्ण योगदान होता है। वंशानुक्रम में बंटी ने मातापिता की योग्यता और अहं आदि गुण प्राप्त किए हैं लेकिन प्रतिकूल परिस्थिति के कारण उसका स्वभाव एबनार्मल हो जाता है। पड़ोसीवाला टीटू की माँ के व्यंग्यबाण उसे पीड़ा पहुँचाते हैं और वह निरंतर ही मम्मी-पापा की दोस्ती करवाने केलिए प्रयत्नशील रहता है। बंटी स्वभाव से जिज्ञासु है। मम्मी के अतिरिक्त लाड़प्यार ने उसे कभी आत्मनिर्भर नहीं होने दिया। इसके कारण वह असुरक्षा और कुंठा से भर उठता है और इसीलिए उल्टे सीधे व्यवहार के द्वारा माँ का ध्यान आकर्षित करके संरक्षण पाने का प्रयास करता है। आत्म केन्द्रित होने के कारण ही वह अत्यंत संवेदनशील है। इस प्रकार लेखिका ने बंटी के चिंतन और व्यवहार में आए परिवर्तन को रेखांकित किया है। इस रूप में बंटी की जीवनगाथा मनोवैज्ञानिक तथ्यों और प्रामाणिकता के आधार पर प्रस्तुत हुई है। वह एक असाधारण पात्र है जो व्यक्तिवादी मान्यताओं का प्रतिनिधि है। मन्नूजी ने स्पष्ट किया है कि "मैं इस त्रिकोण में से किसी एक भुजा को न अस्वीकार कर सकी, न ही गलत सिद्ध कर सकी। गलत और सही अगर कोई हो सकते हैं तो वे अजय, शकुन, बंटी के आपसी संबंधा।"[3]

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि 'आपका बंटी' उपन्यास का कथानक सामाजिक है। यह उपन्यास बाल समस्याओं और माता-पिता के बालकों के प्रति उत्तरदायित्व को ही उजागर नहीं करना, बल्कि टूटते हुए दांपत्य जीवन और पुनर्विवाह की समस्या को भी मुखरित करता है। बाल मनोविज्ञान की गहरी समझ-बूझ केलिए चर्चित, प्रशंसित इस उपन्यास का हर पृष्ठ मर्मस्पर्शी और विचारोत्तेजक है। हिन्दी उपन्यास की एक मूल्यवान उपलब्धि के रूप में आपका बंटी एक कालजयी उपन्यास है।

सन्दर्भ :

1. आपका बंटी, मन्नू भंडारी; राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, प्रकाशन वर्ष 1979, पृ.सं6
2. हिन्दी कथा साहित्य समकालीन संदर्भ, डॉ. ज्ञान अस्थाना; जवाहर पुस्तकालय, मथुरा, प्रकाशन; वर्ष 1981, पृ. सं. 88
3. आपका बंटी; मन्नू भंडारी; राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली; प्रकाशन वर्ष 1979, पृ.सं7
4. वही पृ.सं8

♦ अध्यक्षा एवं सहायक प्राध्यापिका
के. एस. एम. डी. बी. कॉलेज
शास्ताम्कोट्टा,
कोल्लम जिला, केरल राज्य।

मुद्रक तथा प्रकाशक डॉ.पी.लता, आरती, टी.सी. 14/1592, फोरस्ट ऑफिस लेन, वषुतक्काटु, तिरुवनन्तपुरम -14 द्वारा अबी प्रकाशन एन्ड प्री-प्रेस, करुमम्, तिरुवनन्तपुरम -2 में मुद्रित तथा डॉ.पी.लता द्वारा संपादित
Printed & Published by Dr.P.Letha, Arathi, T.C. 14/1592, Forest Office Lane, Vazhuthacaud, Thiruvananthapuram -14,
Printed at Abi Design & Pre-Press, Karumom, Thiruvananthapuram -2 & Edited by Dr. P. Letha